ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगीताजीकी महिमा ।

वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीताका महात्म्य वाणी द्वारा वर्णन करनेके लिये किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है । इसमें सम्पूर्ण वेदोंका सार सार संग्रह किया गया है, इसकी संस्कृत इतनी सुन्दर और सरल है कि, थोड़ा अभ्यास करनेसे मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है, परन्तु इसका आशय इतना गम्भीर है कि, आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहने पर भी उसका अन्त नहीं आता । प्रतिदिन नये नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदा ही नवीन बना रहता है । एवं एकाग्रचित्त होकर श्रद्धा, भक्ति सहित विचार करनेसे इसके पद पदमें परम रहस्य भरा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है । भगवान्‌के गुण, प्रभाव और मर्मका वर्णन जिस प्रकार इस गीता शास्त्रमें किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थोंमें मिलना कठिन है क्योंकि प्रायः ग्रन्थोंमें कुछ न कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है, परन्तु "श्रीमद्भगवद्गीता" एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र भगवान्‌ने कहा है कि जिसमें एक भी शब्द सदुपदेशसे खाली नहीं है । इसीलिये श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमें गीताजीका वर्णन करनेके उपरान्त कहा है किः—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

गीता सुगीता करने योग्य है, अर्थात् श्रीगीताजीको भली-प्रकार पढ़कर अर्थ और भाव सहित अन्तःकरणमें धारण कर-

लेना मुख्य कर्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णु भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली हुई है, (फिर) अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है ? तथा स्वयं भगवान्‌ने भी इसका महात्म्य अन्तमें वर्णन किया है। (अ० १८ श्लोक ६८ से ७१ तक)

इस गीता शास्त्रमें मनुष्य मात्रका अधिकार है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रममें स्थित होवे, परन्तु भगवान्‌में श्रद्धालु और भक्तियुक्त अवश्य होना चाहिये;क्योंकि अपने भक्तोंमें ही इसका प्रचार करनेके लिये भगवान्‌ने आज्ञा दी है तथा यह भी कहा है कि, स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले मनुष्य भी मेरे परायण होकर परम गतिको प्राप्त होते हैं (अ० ९ श्लो० ३२) एवं अपने अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा मेरी पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं (अ० १८ श्लो० ४६) इन सब पर विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि, परमात्माकी प्राप्तिमें सभीका अधिकार है।

परन्तु उक्त विषयके मर्मको न समझनेके कारण बहुतसे मनुष्य जिन्होंने श्रीगीताजीका केवल नाम मात्र ही सुना है, वे कह दिया करते हैं कि, गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये ही है और वे अपने बालकोंको भी इसी भयसे श्रीगीताजीका अभ्यास नहीं कराते कि गीताके ज्ञानसे कदाचित् लड़का घर छोड़कर संन्यासी न हो जाय, किन्तु उनको विचार करना चाहिये कि, मोहके कारण अपने क्षात्रधर्मसे विमुख होकर भिक्षाके अन्नसे निर्वाह करनेके लिये तय्यार हुए अर्जुनने जिस परम रहस्यमय गीताके उपदेशसे आजीवन गृहस्थमें रहकर अपने कर्तव्यका पालन किया, उस गीता शास्त्रका यह उलटा परिणाम किस प्रकार हो सकता है।

अतएव कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको उचित है कि

मोहका त्याग करके अतिशय श्रद्धा, भक्तिपूर्वक अपने बालकोंको अर्थ और भावके सहित श्रीगीताजीका अध्ययन करावें, एवं स्वयं भी इसका पठन और मनन करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर हो जायँ। क्योंकि अति दुर्लभ मनुष्यके शरीरको प्राप्त होकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी दुःख-मूलक क्षणभंगुर भोगोंके भोगनेमें नष्ट करना उचित नहीं है।

श्रीगीताका प्रधान विषय।

श्रीगीताजीमें भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मुख्य दो मार्ग बताये हैं। एक सांख्ययोग, दूसरा कर्मयोग। उनमें—

(१) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी भांति अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामय होनेसे मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें वर्त्तते हैं, ऐसे समझकर मन, इन्द्रियां और शरीर द्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होना (अ० ५ श्लो० ८, ९) तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवके सिवाय अन्य किसीके भी होनेपनेका भाव न रहना। यह तो सांख्ययोगका साधन है।

(२) और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि, असिद्धिमें समत्व भाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान्‌के ही लिये सब कर्मोंका आचरण करना। (अ० २ श्लो० ४८ अ० ५ श्लो० १०) तथा श्रद्धा, भक्ति-पूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना (अ० ६ श्लो० ४७) यह निष्काम-कर्मयोगका साधन है।

उक्त दोनों साधनोंका परिणाम एक होनेके कारण वास्तवमें अभिन्न माने गये हैं (अ० ५ श्लो० ४, ५) परन्तु साधनकालमें अधिकारी भेदसे दोनोंका भेद होनेके कारण दोनों मार्ग भिन्न भिन्न बताये गये हैं। (अ० ३ श्लो० ३) इसलिये एक पुरुष दोनों मार्गों द्वारा एक कालमें नहीं चल सकता, जैसे श्रीगङ्गाजी पर जानेके लिये दो मार्ग होते हुए भी एक मनुष्य दोनों मार्गों द्वारा एक कालमें नहीं जा सकता। उक्त साधनोमें कर्मयोगका साधन संन्यास आश्रममें नहीं बन सकता, क्योंकि संन्यास आश्रममें कर्मोंका स्वरूपसे भी त्याग कहा है। और सांख्ययोगका साधन सभी आश्रमोंमें बन सकता है।

यदि कहो कि, सांख्ययोगको भगवान्ने संन्यासके नामसे कहा है, इसलिये उसका संन्यास आश्रममें ही अधिकार है, गृहस्थमें नहीं। तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि दूसरे अध्याय में श्लोक ११ से ३० तक जो सांख्यनिष्ठाका उपदेश किया गया है, उसके अनुसार भी भगवान्ने जगह जगह अर्जुनको युद्ध करनेकी योग्यता दिखाई है। यदि गृहस्थमें सांख्ययोगका अधिकार ही नहीं होता तो इस प्रकार भगवान्का कहना कैसे बन सकता ? हां इतनी विशेषता अवश्य है कि सांख्यमार्गका अधिकारी देहाभिमानसे रहित होना चाहिये। क्योंकि जबतक शरीरमें अहंभाव रहता है, तबतक सांख्ययोगका साधन भली-प्रकार समझमें नहीं आता। इसीसे भगवान्ने सांख्ययोगको कठिन बताया है (गीता अ० ५ श्लो० ६) और निष्काम-कर्मयोग साधनमें सुगम होनेके कारण अर्जुनके प्रति जगह जगह कहा है कि, तूं निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ निष्काम-कर्मयोगका आचरण कर।

अथ ध्यानम्

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

अर्थ—जिसकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्या पर शयन किये हुए है, जिसकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंका भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगतका आधार है, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त है, नीलमेघके समान जिसका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिसके सम्पूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किया जाता है, जो सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी है, जो जन्ममरणरूप भयका नाश करनेवाला है, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति, कमलनेत्र विष्णु भगवान्को मैं (सिरसे) प्रणाम करता हूं ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रों द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदों द्वारा जिसका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्गत हुए मनसे जिसका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिसके अन्तको नहीं जानते उस (परम पुरुष नारायण] देवके लिये मेरा नमस्कार है ।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥
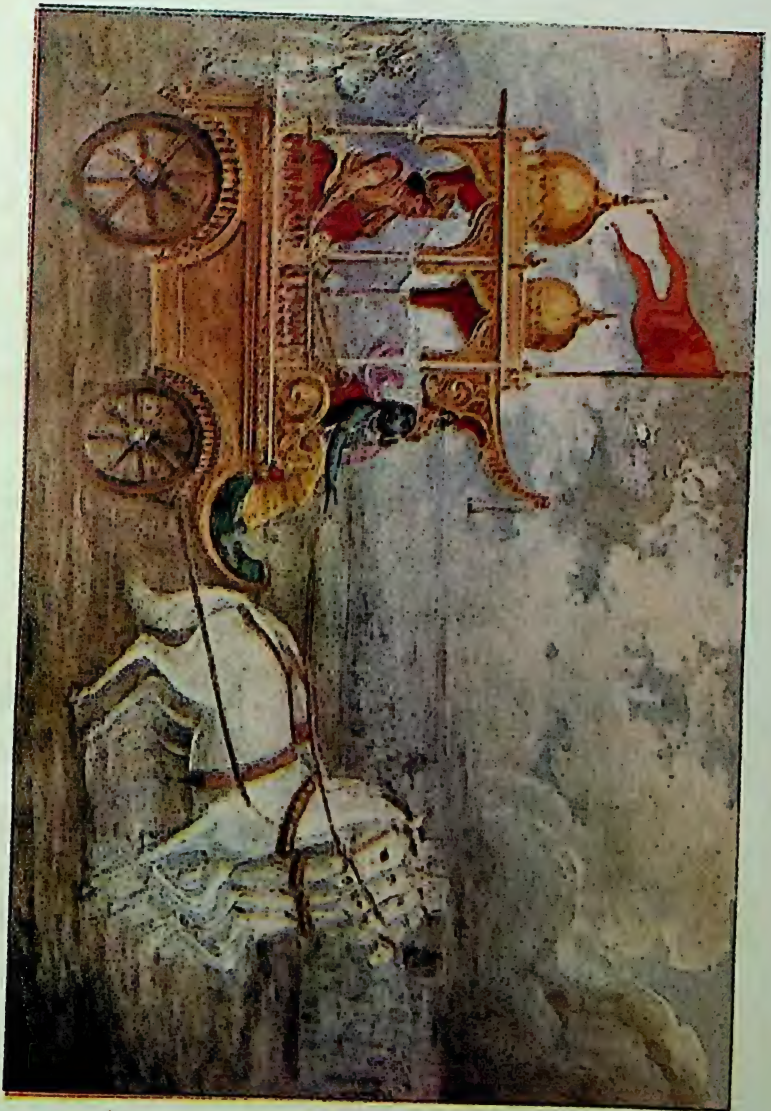
क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

तत्, क्षेत्रम्, यत्, च, यादृक्, च, यद्विकारि, यतः, च, यत्, सः, च, यः, यत्प्रभावः, च, तत्, समासेन, मे, शृणु ॥

इसलिये–

तत्	=वह	च	=तथा
क्षेत्रम्	=क्षेत्र	सः	=वह (क्षेत्रज्ञ)
यत्	=जो है	च	=भी
च	=और	यः	=जो है (और)
यादृक्	=जैसा है	यत्प्रभावः	=जिस प्रभाव-वाला है
च	=तथा	तत्	=वह सब
यद्विकारि	=जिन विका-रोंवाला है	समासेन	=संक्षेपसे
च	=और	मे	=मेरेसे
यतः	=जिस कारणसे	शृणु	=सुन ॥
यत्	=जो हुआ है		

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैःपृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

ऋषिभिः, बहुधा, गीतम्, छंदोभिः, विविधैः, पृथक्, ब्रह्मसूत्रपदैः, च, एव, हेतुमद्भिः, विनिश्चितैः ॥

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व–

ऋषिभिः	=ऋषियों द्वारा	(च)	=और
बहुधा गीतम्	=बहुतप्रकारसे कहा गया है अर्थात् समझाया गया है	विविधैः	=नाना प्रकारके
		छन्दोभिः	=वेद मंत्रोंसे
		पृथक्	=विभाग पूर्वक
		(गीतम्)	=कहा गया है

च	=तथा	ब्रह्मसूत्र-पदैः	=ब्रह्मसूत्रके पदों द्वारा
विनिश्चितैः	=अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए	एव	=भी (वैसे ही कहा गया है) ॥
हेतुमद्भिः	=युक्तियुक्त		

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥५॥

महाभूतानि, अहंकारः, बुद्धिः, अव्यक्तम्, एव, च, इन्द्रियाणि, दश, एकम्, च, पंच, च, इन्द्रियगोचराः ॥

और हे अर्जुन वही मैं तेरे लिये कहता हूं कि–

महाभूतानि	=पांच महाभूत*	दश	=दश
अहंकारः	=अहंकार	इंद्रियाणि	=इंद्रियां†
बुद्धिः	=बुद्धि	एकम्	=एक मन
च	=और	च	=और
अव्यक्तम्	=मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया	पंच	=पांच
एव	=भी	इन्द्रियगोचराः	=इंद्रियोंके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ॥
च	=तथा		

* अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका सूक्ष्म भाव।

† अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

इच्छा, द्वेषः, सुखम्, दुःखम्, संघातः, चेतना, धृतिः, एतत्, क्षेत्रम्, समासेन, सविकारम्, उदाहृतम् ॥

तथा–

इच्छा	= इच्छा	धृतिः	= धृति † (इस प्रकार)
द्वेषः	= द्वेष	एतत्	= यह
सुखम्	= सुख	क्षेत्रम्	= क्षेत्र
दुःखम्	= दुःख (और)	सविकारम्	= { विकारोंके सहित ‡
संघातः	= { स्थूल देहका पिण्ड (एवं)	समासेन	= संक्षेपसे
चेतना	= चेतनता * (और)	उदाहृतम्	= कहा गया ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ७

अमानित्वम्, अदंभित्वम्, अहिंसा, क्षांतिः, आर्जवम्, आचार्योपासनम्, शौचम्, स्थैर्यम्, आत्मविनिग्रहः ॥

---

* शरीर और अन्तःकरणकी एक प्रकारकी चेतन शक्ति ।

† गीता अध्याय १८ श्लोक ३३-३४-३५ में देखना चाहिये ।

‡ पांचवें श्लोकमें कहा हुआ तो क्षेत्रका स्वरूप समझना चाहिये, और इस श्लोकमें कहे हुए इच्छादि क्षेत्रके विकार समझने चाहिये ।

और हे अर्जुन—

अमानित्वम्	= श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव	आर्जवम्	= मन वाणीकी सरलता
अदंभित्वम्	= दंभाचरणका अभाव	आचार्योपासनम्	= श्रद्धा भक्ति सहित गुरुकी सेवा
अहिंसा	= प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी न सताना (और)	शौचम्	= बाहर भीतरकी शुद्धि*
क्षांतिः	= क्षमा भाव (तथा)	स्थैर्यम्	= अंतःकरणकी स्थिरता
		आत्मविनिग्रहः	= मन और इंद्रियों सहित शरीरका निग्रह ॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८

इंद्रियार्थेषु, वैराग्यम्, अनहंकारः, एव, च, जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

* सत्यता पूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य वर्तावसे आचरणोंकी और जल मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको बाहरकी शुद्धि कहते हैं तथा राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि कही जाती है।

तथा-

इंद्रियार्थेषु	=	इस लोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंमें
वैराग्यम्	=	आसक्तिका अभाव
च	=	और
अनहंकारः एव	=	अहंकारका भी अभाव

(एवं)

जन्म	=	जन्म
मृत्यु	=	मृत्यु
जरा	=	जरा (और)
व्याधि	=	रोग आदिमें
दुःख	=	दुःख
दोष	=	दोषोंका
अनुदर्शनम्	=	बारंबार विचार करना ॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

असक्तिः, अनभिष्वंगः, पुत्रदारगृहादिषु, नित्यम्, च, समचित्तत्वम्, इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

तथा-

पुत्रदारगृहादिषु	=	पुत्र स्त्री घर और धनादिमें
असक्तिः	=	आसक्तिका अभाव (और)
अनभिष्वंगः	=	ममताका न होना
च	=	तथा
इष्टानिष्टोपपत्तिषु	=	प्रियअप्रियकी प्राप्तिमें
नित्यम्	=	सदा ही
समचित्तत्वम्	=	चित्तका सम रहना-

अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलके प्राप्त होनेपर हर्ष शोकादि विकारोंका न होना ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

मयि, च, अनन्ययोगेन, भक्तिः, अव्यभिचारिणी, विविक्तदेशसेवित्वम्, अरतिः, जनसंसदि ॥

और–

मयि	= मुझ परमेश्वरमें	विविक्तदेशसेवित्वम्	= एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव (और)
अनन्ययोगेन	= एकी भावसे स्थितिरूप ध्यानयोगके द्वारा	जनसंसदि	= विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें
अव्यभिचारिणी	= अव्यभिचारिणी		
भक्तिः	= भक्ति*		
च	= तथा	अरतिः	= प्रेमका न होना ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्, तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्, एतत्, ज्ञानम्, इति, प्रोक्तम्, अज्ञानम्, यत्, अतः, अन्यथा ॥११॥

* केवल एक सर्व शक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके श्रद्धा और भावके सहित परमप्रेमसे भगवान्का निरन्तर चिन्तन करना अव्यभिचारिणी भक्ति है ॥

तथा—

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् = अध्यात्म ज्ञान*में नित्य स्थिति (और)	ज्ञानम् = ज्ञान है† (और)
	यत् = जो
	अतः = इससे
तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् = तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना	अन्यथा = विपरीत है
	(तत्) = वह
	अज्ञानम् = अज्ञान है‡
	इति = ऐसे
एतत् = यह सब (तो)	प्रोक्तम् = कहा है ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

ज्ञेयम्, यत्, तत्, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, अमृतम्, अश्नुते, अनादिमत्, परम्, ब्रह्म, न, सत्, तत्, न, असत्, उच्यते ॥

और हे अर्जुन—

यत् = जो	(च) = तथा
ज्ञेयम् = जाननेके योग्य है	यत् = जिसको
	ज्ञात्वा = जानकर (मनुष्य)

---

* जिस ज्ञानके द्वारा आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु जानी जाय उस ज्ञानका नाम अध्यात्म ज्ञान है।

† इस अध्यायके श्लो० ७ से लेकर यहांतक जो साधन कहे हैं वे सब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमें हेतु होनेसे ज्ञाननामसे कहे गये हैं।

‡ ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे विपरीत जो मान, दंभ, हिंसा आदि हैं वे अज्ञानकी वृद्धिमें हेतु होनेसे अज्ञाननामसे कहे गये हैं ॥

अमृतम् = परमानंदको
अश्नुते = प्राप्त होता है
तत् = उसको
प्रवक्ष्यामि = अच्छी प्रकार कहूंगा
तत् = वह
अनादिमत् = आदि रहित
परम् = परम
ब्रह्म = ब्रह्म (अकथनीय होनेसे)
न = न
सत् = सत् (कहा जाता है और)
न = न
असत् = असत् ही
उच्यते = कहा जाता है॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१३॥

सर्वतः, पाणिपादम्, तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्, सर्वतः, श्रुतिमत्, लोके, सर्वम्, आवृत्य, तिष्ठति ॥

परन्तु—

तत् = वह
सर्वतः पाणिपादम् = सब ओरसे हाथ पैरवाला (एवं)
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् = सब ओरसे नेत्र सिर और मुखवाला (तथा)
सर्वतः श्रुतिमत् = सब ओरसे श्रोत्रवाला
(अस्ति) = है
(यतः) = क्योंकि (वह)
लोके = संसारमें
सर्वम् = सबको
आवृत्य = व्याप्त करके
तिष्ठति = स्थित है*॥

*आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्त करके स्थित है वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे संपूर्ण चराचर जगतको व्याप्त करके स्थित है॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्, असक्तम्, सर्वभृत्, च, एव, निर्गुणम्, गुणभोक्तृ, च ॥

और—

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्	= संपूर्ण इंद्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है (परंतु वास्तवमें)	निर्गुणम्	= गुणोंसे अतीत
सर्वेन्द्रियविवर्जितम्	= सब इंद्रियोंसे रहित है	(सन्)	= हुआ
च	= तथा	एव	= भी (अपनी योगमायासे)
असक्तम्	= आसक्तिरहित (और)	सर्वभृत्	= सबको धारण पोषण करनेवाला
		च	= और
		गुणभोक्तृ	= गुणोंको भोगनेवाला है ॥

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् १५

बहिः, अंतः, च, भूतानाम्, अचरम्, चरम्, एव, च, सूक्ष्मत्वात्, तत्, अविज्ञेयम्, दूरस्थम्, च, अंतिके, च, तत् ॥

तथा वह परमात्मा—

भूतानाम्	= चराचर सब भूतोंके	बहिः	= बाहर
		अन्तः	= भीतर परिपूर्ण है

च	=और	अविज्ञेयम्	=अविज्ञेय है*
चरम्	=चर	च	=तथा
अचरम्	=अचररूप	अन्तिके	=अति समीपमें†
एव	=भी (वही) है		
च	=और	च	=और
तत्	=वह	दूरस्थम्	=दूरमें भी स्थित‡
सूक्ष्मत्वात्	=सूक्ष्म होनेसे	तत्	=वही है ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च १६

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्, भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च ॥

च	=और (वह)	च	=भी
अविभक्तम्	=विभाग रहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण हुआ	भूतेषु	=चराचर संपूर्ण भूतोंमें
		विभक्तम्	=पृथक् पृथक्के
		इव	=सदृश

---

* जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है।

† वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होनेसे अत्यन्त समीप है।

‡ श्रद्धा रहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण बहुत दूर है।

स्थितम्	= स्थित* (प्रतीत होता है तथा)	च	= और
तत्	= वह	ग्रसिष्णु	= रुद्ररूपसे संहार करनेवाला
ज्ञेयम्	= ज्ञानने योग्य परमात्मा	च	= तथा
भूतभर्तृ	= विष्णुरूपसे भूतोंको धारण पोषण करनेवाला	प्रभविष्णु	= ब्रह्मारूपसे सबका उत्पन्न करनेवाला है

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम् ॥१७॥

और–

तत्	= वह ब्रह्म	परम्	= अति परे
ज्योतिषाम्	= ज्योतियोंका	उच्यते	= कहा गया है (तथा वह परमात्मा)
अपि	= भी		
ज्योतिः	= ज्योति[†] (एवं)		
तमसः	= मायासे	ज्ञानम्	= बोधस्वरूप (और)

* जैसे महाकाश विभाग रहित स्थित हुआ भी घड़ोंमें पृथक् पृथक्के सदृश प्रतीत होता है वैसे ही परमात्मा सब भूतोंमें एकरूपसे स्थित हुआ भी पृथक् पृथक्की भांति प्रतीत होता है ।

† गीता अ० १५ श्लो० १२ में देखना चाहिये ।

ज्ञेयम्	= { जाननेके योग्य है (एवं)		(और)
		सर्वस्य	= सबके
ज्ञान-गम्यम्	= { तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाला	हृदि	= हृदयमें
		विष्ठितम्	= स्थित है ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः, मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते ॥

हे अर्जुन—

इति	= इस प्रकार	समासतः	= संक्षेपसे
क्षेत्रम्	= क्षेत्र *	उक्तम्	= कहा गया
तथा	= तथा	एतत्	= इसको
ज्ञानम्	= ज्ञान †	विज्ञाय	= तत्त्वसे जानकर
च	= और	मद्भक्तः	= मेरा भक्त
ज्ञेयम्	= { जानने योग्य‡ परमात्माका स्वरूप	मद्भावाय	= मेरे स्वरूपको
		उपपद्यते	= प्राप्त होता है॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्॥

* श्लोक ५-६ में विकार सहित क्षेत्रका स्वरूप कहा है।

† श्लोक ७ से ११ तक ज्ञान अर्थात् ज्ञानका साधन कहा है।

‡ श्लोक १२ से १७ तक ज्ञेयका स्वरूप कहा है।

प्रकृतिम्, पुरुषम्, च, एव, विद्धि, अनादी, उभौ, अपि,
विकारान्, च, गुणान्, च, एव, विद्धि, प्रकृतिसंभवान् ॥१६॥

और हे अर्जुन-

प्रकृतिम् = प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी मेरी माया
च = और
पुरुषम् = जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ
उभौ = इन दोनोंको
एव = ही (तूं)
अनादी = अनादि
विद्धि = जान
च = और
विकारान् = रागद्वेषादि विकारोंको
च = तथा
गुणान् = त्रिगुणात्मक संपूर्ण पदार्थोंको
अपि = भी
प्रकृतिसंभवान् एव = प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए
विद्धि = जान ॥

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥२०

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः, प्रकृतिः, उच्यते, पुरुषः, सुखदुःखानाम्, भोक्तृत्वे, हेतुः, उच्यते ॥

क्योंकि-

कार्यकरणकर्तृत्वे = कार्य और करणके* उत्पन्न करनेमें
हेतुः = हेतु
प्रकृतिः = प्रकृति
उच्यते = कही गई है

---

* आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी तथा शब्द, स्पर्श, रूप,

	(और)	भोक्तृत्वे	= भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें
पुरुषः	= जीवात्मा	हेतुः	= हेतु
सुखदुःखानाम्	= सुखदुःखोंके	उच्यते	= कहा गया है ॥

पुरुषःप्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥२१

पुरुषः, प्रकृतिस्थः, हि, भुंक्ते, प्रकृतिजान्, गुणान्, कारणम्, गुणसंगः, अस्य, सदसद्योनिजन्मसु ॥

परन्तु—

प्रकृतिस्थः	= प्रकृतिमें* स्थित हुआ		(इन)
हि	= ही	गुणसंगः	= गुणोंका संग
पुरुषः	= पुरुष	(एव)	= ही
प्रकृतिजान्	= प्रकृतिसे उत्पन्न हुए	अस्य	= इस जीवात्माके
गुणान्	= त्रिगुणात्मक सब पदार्थोंको	सदसद्योनिजन्मसु	= अच्छी बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें
भुंक्ते	= भोगता है (और)	कारणम्	= कारण है† ॥

रस, गन्ध इनका नाम कार्य है। बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा इन १३ का नाम करण है ॥

* प्रकृति शब्दका अर्थ गीता अ० ७ श्लो० १४ में कही हुई भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया समझनी चाहिये।

† सत्त्वगुणके संगसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके संगसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके संगसे पशु पक्षी आदि नीचयोनियोंमें जन्म होता है।

उपद्रष्टानुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः २२

उपद्रष्टा, अनुमंता, च, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वरः, परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः ॥

वास्तवमें तो यह—

पुरुषः = पुरुष
अस्मिन् = इस
देहे = देहमें
(स्थितः) = स्थित हुआ
अपि = भी
परः = पर*
(एव) = ही है (केवल)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमंता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमंता (एवं)
भर्त्ता = सबको धारण करनेवाला होनेसे भर्त्ता
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता (तथा)
महेश्वरः = ब्रह्मादिकोंका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

* अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ।

यः, एवम्, वेत्ति, पुरुषम्, प्रकृतिम्, च, गुणैः, सह,
सर्वथा, वर्त्तमानः,अपि,न, सः, भूयः,अभिजायते ॥२३॥

एवम्	=इस प्रकार	सः	=वह
पुरुषम्	=पुरुषको	सर्वथा	=सब प्रकारसे
च	=और	वर्त्तमानः	=वर्तता हुआ
गुणैः	=गुणोंके	अपि	=भी
सह	=सहित	भूयः	=फिर
प्रकृतिम्	=प्रकृतिको	न	=नहीं
यः	=जो मनुष्य	अभि-जायते	=जन्मता है—
वेत्ति	=तत्त्वसे जानता है*		

अर्थात् पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है ॥

ध्यानेनात्मानिपश्यंति केचिदात्मानमात्मना
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे २४

ध्यानेन, आत्मनि, पश्यंति, केचित्, आत्मानम्, आत्मना,
अन्ये, सांख्येन, योगेन, कर्मयोगेन, च, अपरे ॥

---

* दृश्यमात्र संपूर्ण जगत मायाका कार्य होनेसे क्षण-भंगुर, नाशवान्, जड और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोधस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही सनातन अंश है इस प्रकार समझकर संपूर्ण मायिक पदार्थोंके संगका सर्वथा त्याग करके परमपुरुष परमात्मामें ही एकीभावसे नित्य स्थित रहनेका नाम उनको तत्त्वसे जानना है ।

हे अर्जुन उस परमपुरुष–

आत्मानम्	=परमात्माको	सांख्येन	=ज्ञान†
केचित्	={कितने ही मनुष्य तो	योगेन	=योगके द्वारा (देखते हैं)
आत्मना	={शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे	च	=और
ध्यानेन	=ध्यानके द्वारा*	अपरे	=अपर (कितने ही)
आत्मनि	=हृदयमें	कर्म-योगेन	={निष्कामकर्म-योगके द्वारा‡
पश्यन्ति	=देखते हैं (तथा)	(पश्यन्ति)	=देखते हैं ॥
अन्ये	=अन्य (कितनेही)		

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥२५

अन्ये, तु, एवम्, अजानंतः, श्रुत्वा,अन्येभ्यः,उपासते, ते, अपि, च, अतितरंति, एव, मृत्युम्, श्रुतिपरायणाः ॥

---

* जिसका वर्णन गीता अ० ६ में श्लो० ११ से ३२ तक विस्तार पूर्वक किया है ।

† जिसका वर्णन गीता अ० २ में श्लो० ११ से ३० तक विस्तार पूर्वक किया है ।

‡ जिसका वर्णन गीता अ० २ श्लो० ४० से अध्याय समाप्ति पर्यंत विस्तार पूर्वक किया है ।

तु	=परन्तु	उपासते	=उपासना करते हैं*
अन्ये	=इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं वे (स्वयं)	च	=और
		ते	=वे
		श्रुतिपरायणाः	=सुननेके परायण हुए पुरुष
एवम्	=इस प्रकार	अपि	=भी
अजानंतः	=न जानते हुए	मृत्युम्	=मृत्युरूप संसार सागरको
अन्येभ्यः	=दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे	अतितरंति एव	=निःसन्देह तर जाते हैं ॥
श्रुत्वा	=सुनकर ही		

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

यावत्, संजायते, किंचित्, सत्त्वम्, स्थावरजंगमम्, क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तत्, विद्धि, भरतर्षभ ॥

भरतर्षभ	=हे अर्जुन	स्थावरजंगमम्	=स्थावर जंगम
यावत्	=यावन्मात्र		
किंचित्	=जो कुछ भी	सत्त्वम्	=वस्तु

---

* अर्थात् उन पुरुषोंके कहनेके अनुसार ही श्रद्धा सहित तत्पर हुए साधन करते हैं।

संजायते = उत्पन्न होती है
तत् = उस संपूर्णको (तूं)
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् = { क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही (उत्पन्न हुई)
विद्धि = जान—

अर्थात् प्रकृति और पुरुषके परस्परके सम्बन्धसे ही संपूर्ण जगतकी स्थिति है, वास्तवमें तो संपूर्ण जगत नाशवान् और क्षणभंगुर होनेसे अनित्य है॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति

सममू, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठंतम्, परमेश्वरम्, विनश्यत्सु, अविनश्यंतम्, यः, पश्यति, सः, पश्यति ॥२७॥

इस प्रकार जानकर—

यः = जो पुरुष
विनश्यत्सु = { नष्ट होते हुए
सर्वेषु = सब
भूतेषु = चराचर भूतोंमें
अविनश्यंतम् } = नाश रहित
परमेश्वरम् = परमेश्वरको
समम् = सम भावसे
तिष्ठंतम् = स्थित
पश्यति = देखता है
सः = वही
पश्यति = देखता है॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिं

समम्, पश्यन्, हि, सर्वत्र, समवस्थितम्, ईश्वरम्, न, हिनस्ति, आत्मना, आत्मानम्, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥२८॥

हि	=क्योंकि (वह पुरुष)	आत्मना	=अपने द्वारा
सर्वत्र	=सबमें	आत्मानम्	=आपको
समवस्थितम्	=सम भावसे स्थित हुए	न हिनस्ति	=नष्ट नहीं करता है *
ईश्वरम्	= परमेश्वरको	ततः	=इससे (वह)
समम्	=समान	पराम्	=परम
पश्यन्	=देखता हुआ	गतिम्	=गतिको
		याति	=प्राप्त होता है॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यःपश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति २९

प्रकृत्या, एव, च, कर्माणि, क्रियमाणानि, सर्वशः, यः, पश्यति, तथा, आत्मानम्, अकर्त्तारम्, सः, पश्यति ॥

च	=और	प्रकृत्या	=प्रकृतिसे
यः	=जो पुरुष	एव	=ही
कर्माणि	=संपूर्ण कर्मोंको	क्रियमाणानि	=किये हुए
सर्वशः	=सब प्रकारसे		

* अर्थात् शरीरका नाश होनेसे अपने आत्माका नाश नहीं मानता है।

(पश्यति) = देखता है *
तथा = तथा
आत्मानम् = आत्माको
अकर्त्तारम् = अकर्त्ता
पश्यति = देखता है
सः = वही
पश्यति = देखता है ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

यदा, भूतपृथग्भावम्, एकस्थम्, अनुपश्यति, ततः, एव, च, विस्तारम्, ब्रह्म, संपद्यते, तदा ॥

और यह पुरुष—

यदा = जिसकालमें
भूतपृथग्भावम् = भूतोंके न्यारे न्यारे भावको
एकस्थम् = एक परमात्माके संकल्पके आधार स्थित
अनुपश्यति = देखता है
च = तथा
ततः = उस परमात्माके संकल्पसे
एव = ही
विस्तारम् = संपूर्ण भूतोंका विस्तार
(पश्यति) = देखता है
तदा = उस कालमें
ब्रह्म = सच्चिदानंदघन ब्रह्मको
संपद्यते = प्राप्त होता है ॥

---

* अर्थात् इस बातको तत्त्वसे समझ लेता है कि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संपूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः, शरीरस्थः, अपि, कौंतेय, न, करोति, न, लिप्यते ॥३१॥

कौंतेय	= हे अर्जुन	शरीरस्थः	= शरीरमें स्थित हुआ
अनादित्वात्	= अनादि होनेसे (और)	अपि	= भी (वास्तवमें)
निर्गुणत्वात्	= गुणातीत होनेसे	न	= न
अयम्	= यह	करोति	= करता है (और)
अव्ययः	= अविनाशी	न	= न
परमात्मा	= परमात्मा	लिप्यते	= लिपायमान होता है ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ३२

यथा, सर्वगतम्, सौक्ष्म्यात्, आकाशम्, न, उपलिप्यते, सर्वत्र, अवस्थितः, देहे, तथा, आत्मा, न, उपलिप्यते ॥

यथा	= जिस प्रकार	सौक्ष्म्यात्	= सूक्ष्म होनेके कारण
सर्वगतम्	= सर्वत्र व्याप्त हुआ (भी)	न उपलिप्यते	= लिपायमान नहीं होता है
आकाशम्	= आकाश		

तथा	=वैसे ही	आत्मा	=आत्मा (गुणातीत होनेके कारण देहके गुणोंसे)
सर्वत्र	=सर्वत्र	न उपलिप्यते	=लिपायमान नहीं होता है
देहे	=देहमें		
अवस्थितः	=स्थित हुआ (भी)		

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ३३

यथा, प्रकाशयति, एकः, कृत्स्नम्, लोकम्, इमम्, रविः, क्षेत्रम्, क्षेत्री, तथा, कृत्स्नम्, प्रकाशयति, भारत ॥

भारत	=हे अर्जुन	प्रकाशयति	=प्रकाशित करता है
यथा	=जिस प्रकार	तथा	=उसी प्रकार
एकः	=एक ही	क्षेत्री	=एकही आत्मा
रविः	=सूर्य	कृत्स्नम्	=संपूर्ण
इमम्	=इस	क्षेत्रम्	=क्षेत्रको
कृत्स्नम्	=संपूर्ण	प्रकाशयति	=प्रकाशित करता है-
लोकम्	=ब्रह्माण्डको		

अर्थात् नित्य बोधस्वरूप एक आत्माकी ही सत्तासे संपूर्ण जडवर्ग प्रकाशित होता है ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, एवम्, अंतरम्, ज्ञानचक्षुषा, भूतप्रकृति-मोक्षम्, च, ये, विदुः, यान्ति, ते, परम् ॥३४॥

एवम्	=इस प्रकार	ये	=जो पुरुष
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः	=क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके	ज्ञानचक्षुषा	=ज्ञान नेत्रों द्वारा
अंतरम्	=भेदको*	विदुः	=तत्त्वसेजानतेहैं
च	=तथा	ते	=वे महात्माजन
भूतप्रकृतिमोक्षम्	=विकार सहित प्रकृतिसे छूटनेके उपायको	परम्	=परब्रह्म परमात्माको
		यान्ति	=प्राप्त होते हैं ॥

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग-योगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभागयोग" नामक तेरहवां अध्याय ।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

---

* क्षेत्रको जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञको नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी जानना ही उनके भेदको जानना है ।

ॐ

श्रीपरमात्मनेनमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः

परम्, भूयः, प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानाम्, ज्ञानम्, उत्तमम्, यत्, ज्ञात्वा, मुनयः,सर्वे,पराम्,सिद्धिम्, इतः,गताः ॥१॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन—

ज्ञानानाम्	=ज्ञानोंमें भी	ज्ञात्वा	=जानकर
उत्तमम्	=अति उत्तम	सर्वे	=सब
परम्	=परम	मुनयः	=मुनिजन
ज्ञानम्	=ज्ञानको (मैं)	इतः	=इस संसारसे (मुक्त होकर)
भूयः	=फिर (भी) (तेरे लिये)	पराम्	=परम
प्रवक्ष्यामि	=कहूंगा (कि)	सिद्धिम्	=सिद्धिको
यत्	=जिसको	गताः	=प्राप्त होगये हैं॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥

इदम्, ज्ञानम्, उपाश्रित्य, मम, साधर्म्यम्, आगताः, सर्गे, अपि, न, उपजायंते, प्रलये, न, व्यथंति, च ॥२॥

हे अर्जुन—

इदम्	=इस	सर्गे	=सृष्टिके आदिमें (पुनः)
ज्ञानम्	=ज्ञानको	न, उपजायन्ते	=उत्पन्न नहीं होते हैं
उपाश्रित्य	=आश्रय करके अर्थात् धारण करके	च	=और
मम	=मेरे	प्रलये	=प्रलयकालमें
साधर्म्यम्	=स्वरूपको	अपि	=भी
आगताः	=प्राप्त हुए पुरुष	न व्यथंति	=व्याकुल नहीं होते हैं—

क्योंकि उनकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

मम, योनिः,महत्, ब्रह्म, तस्मिन्, गर्भम्,दधामि,अहम्, संभवः, सर्वभूतानाम्, ततः, भवति, भारत ॥

भारत	=हे अर्जुन	योनिः	=योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है (और)
मम	=मेरी		
महत् ब्रह्म	=महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया (संपूर्ण भूतोंकी)	अहम्	=मैं
		तस्मिन्	=उस योनिमें

गर्भम् = चेतनरूप बीजको	सर्वभूतानाम् = सब भूतोंकी
दधामि = स्थापन करता हूं	संभवः = उत्पत्ति
ततः = उस जड़चेतनके संयोगसे	भवति = होती है ॥

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्त्तयः संभवंति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

सर्वयोनिषु, कौंतेय, मूर्त्तयः, संभवंति, याः, तासाम्, ब्रह्म, महत्, योनिः, अहम्, बीजप्रदः, पिता ॥

तथा–

कौंतेय = हे अर्जुन (नाना प्रकारकी)	योनिः = गर्भको धारण करनेवाली माता है (और)
सर्वयोनिषु = सब योनियोंमें	
याः = जितनी	
मूर्त्तयः = मूर्त्तियां अर्थात् शरीर	अहम् = मैं
संभवंति = उत्पन्न होते हैं	बीजप्रदः = बीजको स्थापन करनेवाला
तासाम् = उन सबकी	
महत् ब्रह्म = त्रिगुणमयी माया (तो)	पिता = पिता हूं ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

सत्त्वम्, रजः, तमः, इति, गुणाः, प्रकृतिसंभवाः, निबध्नंति, महाबाहो, देहे, देहिनम्, अव्ययम् ॥

तथा--

महाबाहो	=हे अर्जुन	गुणाः	=तीनों गुण
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण	अव्ययम्	=इस अविनाशी
रजः	=रजोगुण(और)	देहिनम्	=जीवात्माको
तमः	=तमोगुण	देहे	=शरीरमें
इति	=ऐसे (यह)	निबध्नंति	=बांधते हैं ॥
प्रकृति-संभवाः	=प्रकृतिसे उत्पन्न हुए		

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥

तत्र, सत्त्वम्, निर्मलत्वात्, प्रकाशकम्, अनामयम्, सुखसंगेन, बध्नाति, ज्ञानसंगेन, च, अनघ ॥

अनघ	=हे निष्पाप	सुख-संगेन	=सुखकी आसक्तिसे
तत्र	=उन तीनों गुणोंमें	च	=और
प्रकाशकम्	=प्रकाश करनेवाला	ज्ञान-संगेन	=ज्ञानकी आसक्तिसे अर्थात् ज्ञानके अभिमानसे
अनामयम्	=निर्विकार		
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण(तो)		
निर्मल-त्वात्	=निर्मल होनेके कारण	बध्नाति	=बांधता है ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तान्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥७

रजः, रागात्मकम्, विद्धि, तृष्णासंगसमुद्भवम्, तत्, निबध्नाति, कौंतेय, कर्मसंगेन, देहिनम् ॥

तथा—

कौंतेय	=हे अर्जुन	तत्	=वह
रागात्मकम्	=रागरूप	देहिनम्	=इस जीवात्माको
रजः	=रजोगुणको	कर्मसंगेन	=कर्मोंकी और उनकेफलकी आसक्तिसे
तृष्णासंगसमुद्भवम्	=कामना और आसक्तिसे उत्पन्न हुआ	निबध्नाति	=बांधता है ॥
विद्धि	=जान		

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥८

तमः, तु, अज्ञानजम्, विद्धि, मोहनम्, सर्वदेहिनाम्, प्रमादालस्यनिद्राभिः, तत्, निबध्नाति, भारत ॥

तु	=और	मोहनम्	=मोहनेवाले
भारत	=हे अर्जुन	तमः	=तमोगुणको
सर्वदेहिनाम्	=सर्व देहाभिमानियोंके	अज्ञानजम्	=अज्ञानसे उत्पन्न हुआ

विद्धि	=जान	प्रमादालस्यनिद्राभिः	= प्रमाद* आलस्य[†] और निद्राके द्वारा
तत्	=वह	निबध्नाति	=बांधता है ॥
(देहिनम्)	= इस जीवात्माको		

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

सत्त्वम्, सुखे, संजयति, रजः, कर्मणि, भारत, ज्ञानम्, आवृत्य, तु, तमः, प्रमादे, संजयति, उत ॥

क्योंकि–

भारत	=हे अर्जुन	तु	=तो
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण	ज्ञानम्	=ज्ञानको
सुखे	=सुखमें	आवृत्य	= आच्छादन करके अर्थात् ढकके
संजयति	=लगाता है(और)		
रजः	=रजोगुण		
कर्मणि	=कर्ममें (लगाता है तथा)	प्रमादे	=प्रमादमें
		उत	=भी
तमः	=तमोगुण	संजयति	=लगाता है ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥१०

* इन्द्रियां और अन्तःकरणकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम प्रमाद है ।

† कर्तव्यकर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम आलस्य है ।

रजः, तमः, च, अभिभूय, सत्त्वम्, भवति, भारत, रजः, सत्त्वम्, तमः, च, एव, तमः, सत्त्वम्, रजः, तथा ॥

च	=और	(अभिभूय)	=दबाकर
भारत	=हे अर्जुन	तमः	=तमोगुण (बढ़ता है)
रजः	=रजोगुण (और)	तथा	=वैसे
तमः	=तमोगुणको	एव	=ही
अभिभूय	=दबाकर	तमः	=तमोगुण (और)
सत्त्वम्	=सत्त्वगुण	सत्त्वम्	=सत्त्वगुणको
भवति	=होता है अर्थात् बढ़ता है	(अभिभूय)	=दबाकर
च	=तथा	रजः	=रजोगुण (बढ़ता है) ॥
रजः	=रजोगुण (और)		
सत्त्वम्	=सत्त्वगुणको		

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ११

सर्वद्वारेषु, देहे, अस्मिन्, प्रकाशः, उपजायते, ज्ञानम्, यदा, तदा, विद्यात्, विवृद्धम्, सत्त्वम्, इति, उत ॥

इसलिये—

यदा	=जिसकालमें	सर्वद्वारेषु	=(अंतःकरण औरइंद्रियोंमें
अस्मिन्	=इस	प्रकाशः	=चेतनता
देहे	=देहमें (तथा)		

(च) = और
ज्ञानम् = बोधशक्ति
उपजायते = उत्पन्न होती है
तदा = उस कालमें
इति = ऐसा
विद्यात् = जानना चाहिये
उत = कि
सत्त्वम् = सत्त्वगुण
विवृद्धम् = बढ़ा है ॥

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

लोभः, प्रवृत्तिः, आरंभः, कर्मणाम्, अशमः, स्पृहा, रजसि, एतानि, जायंते, विवृद्धे, भरतर्षभ ॥

और—

भरतर्षभ = हे अर्जुन
रजसि = रजोगुणके
विवृद्धे = बढ़नेपर
लोभः = लोभ (और)
प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा (तथा)
कर्मणाम् = सब प्रकारके कर्मोंका (स्वार्थ बुद्धिसे)
आरंभः = आरम्भ (एवं)
अशमः = अशांति अर्थात् मनकी चंचलता (और)
स्पृहा = विषय भोगोंकी लालसा
एतानि = यह सब
जायंते = उत्पन्न होते हैं ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥१३॥

अप्रकाशः, अप्रवृत्तिः,च, प्रमादः,मोहः, एव, च, तमसि, एतानि, जायंते, विवृद्धे, कुरुनन्दन ॥

तथा—

कुरुनंदन = हे अर्जुन	प्रमादः = प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा
तमसि = तमोगुणके	च = और
विवृद्धे = बढ़नेपर (अन्तःकरण और इंद्रियोंमें)	मोहः = निद्रादि अंतःकरणकी मोहिनी वृत्तियां
अप्रकाशः = अप्रकाश (एवं)	एतानि = यह सब
अप्रवृत्तिः = कर्तव्य कर्मोंमें अप्रवृत्ति	एव = ही
च = और	जायंते = उत्पन्न होते हैं ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४

यदा, सत्त्वे, प्रवृद्धे, तु, प्रलयम्, याति, देहभृत्, तदा, उत्तमविदाम्, लोकान्, अमलान्, प्रतिपद्यते ॥

और हे अर्जुन—

यदा = जब	तु = तो
देहभृत् = यह जीवात्मा	उत्तमविदाम् = उत्तम कर्म करनेवालोंके
सत्त्वे = सत्त्वगुणकी	अमलान् = मलरहित अर्थात् दिव्यस्वर्गादि
प्रवृद्धे = वृद्धिमें	लोकान् = लोकोंको
प्रलयम् = मृत्युको	प्रतिपद्यते = प्राप्त होता है ॥
याति = प्राप्त होता है	
तदा = तब	

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५

रजसि, प्रलयम्, गत्वा, कर्मसंगिषु, जायते, तथा, प्रलीनः, तमसि, मूढयोनिषु, जायते ॥

और–

रजसि	= रजोगुणके बढ़नेपर*		तमसि	= तमोगुणके बढ़नेपर
प्रलयम्	= मृत्युको		प्रलीनः	= मरा हुआ पुरुष (कीट पशु आदि)
गत्वा	= प्राप्त होकर			
कर्मसंगिषु	= कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें		मूढयोनिषु	= मूढ़योनियोंमें
जायते	= उत्पन्न होताहै		जायते	= उत्पन्न होता है॥
तथा	= तथा			

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥१६

कर्मणः, सुकृतस्य, आहुः, सात्त्विकम्, निर्मलम्, फलम्, रजसः, तु, फलम्, दुःखम्, अज्ञानम्, तमसः, फलम्॥

क्योंकि–

सुकृतस्य	= सात्त्विक		कर्मणः	= कर्मका

* अर्थात् जिसकालमें रजोगुण बढ़ता है उस कालमें ।

तुं	=तो	रजसः	=राजस कर्मका
सात्त्विकम्	=सात्त्विक अर्थात् सुखज्ञान और वैराग्यादि	फलम्	=फल
		दुःखम्	=दुःख (एवं)
		तमसः	=तामस कर्मका
निर्मलम्	=निर्मल	फलम्	=फल
फलम्	=फल	अज्ञानम्	=अज्ञान (कहा है)॥
आहुः	=कहा है (और)		

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥१७

सत्त्वात्, संजायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च, प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च ॥

तथा—

सत्त्वात्	=सत्त्वगुणसे	च	=तथा
ज्ञानम्	=ज्ञान	तमसः	=तमोगुणसे
संजायते	=उत्पन्न होता है	प्रमादमोहौ	=प्रमाद*और मोह†
च	=और		
रजसः	=रजोगुणसे	भवतः	=उत्पन्न होते हैं (और)
एव	=निःसन्देह		
लोभः	=लोभ (उत्पन्न होता है)	अज्ञानम्	=अज्ञान
		एव	=भी (होता है)

ऊर्ध्वङ्गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः

*-† इसी अध्यायके श्लोक १३ में देखना चाहिये ।

ऊर्ध्वम्, गच्छंति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठंति, राजसाः, जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छंति, तामसाः ॥१८॥

इसलिये—

सत्त्वस्थाः	= सत्त्वगुणमें स्थितहुएपुरुष
ऊर्ध्वम्	= स्वर्गादि उच्च लोकोंको
गच्छंति	= जाते हैं (और)
राजसाः	= रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष
मध्ये	= मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही
तिष्ठंति	= रहते हैं (एवं)
जघन्य-गुणवृत्ति-स्थाः	= तमोगुणके कार्यरूप निद्रा प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित हुए
तामसाः	= तामस पुरुष
अधः	= अधोगतिको अर्थात् कीट पशु आदि नीच योनियोंको
गच्छंति	= प्राप्त होते हैं ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

न, अन्यम्, गुणेभ्यः,कर्त्तारम्, यदा,द्रष्टा, अनुपश्यति, गुणेभ्यः,च,परम् ,वेत्ति,मद्भावम् ,सः,अधिगच्छति ॥१९॥

और हे अर्जुन—

यदा	= जिस कालमें
द्रष्टा	= द्रष्टा*
गुणेभ्यः	= तीनों गुणोंके सिवाय

* अर्थात् समष्टि चेतनमें एकी भावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष।

अन्यम् = अन्य किसीको
कर्त्तारम् = कर्त्ता
न = नहीं
अनुपश्यति = देखता है अर्थात् गुण ही गुणोंमें वर्त्तते हैं* ऐसा देखता है
च = और
गुणेभ्यः = तीनों गुणोंसे
परम् = अतिपरे सच्चिदानंदघन स्वरूप मुझ परमात्माको
वेत्ति = तत्त्वसे जानता है
(तदा) = उस कालमें
सः = वह पुरुष
मद्भावम् = मेरे स्वरूपको
अधिगच्छति = प्राप्त होता है ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०

गुणान्, एतान्, अतीत्य, त्रीन्, देही, देहसमुद्भवान्, जन्ममृत्युजरादुःखैः, विमुक्तः, अमृतम्, अश्नुते ॥

तथा यह—

देही = पुरुष
एतान् = इन
देहसमुद्भवान् = स्थूल† शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप

---

* त्रिगुणमयी मायासे उत्पन्न हुये अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंका अपने अपने विषयोंमें बिचरना ही गुणोंका गुणोंमें वर्तना है।

† बुद्धि, अहंकार और मन, तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांचभूत, पांच इन्द्रियोंके विषय, इस प्रकार इन २३ तत्त्वोंका पिंडरूप यह

त्रीन्	= तीनों	विमुक्तः	= मुक्त हुआ
गुणान्	= गुणोंको	अमृतम्	= परमानन्दको
अतीत्य	= उल्लंघन करके	अश्नुते	= प्राप्त होता है॥
जन्म-मृत्यु-जरा-दुःखैः	= जन्म मृत्यु वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे		

अर्जुन उवाच

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥

कैः, लिंगैः, त्रीन्, गुणान्, एतान्, अतीतः, भवति, प्रभो, किमाचारः, कथम्, च, एतान्, त्रीन्, गुणान्, अतिवर्त्तते॥२१

इस प्रकार भगवान्के रहस्ययुक्त वचनोंको सुनकर अर्जुनने पूछा कि हे पुरुषोत्तम—

एतान्	= इन	च	= और
त्रीन्	= तीनों	किमाचारः	= किस प्रकारके आचरणोंवाला
गुणान्	= गुणोंसे	(भवति)	= होता है ?
अतीतः	= अतीत हुआ पुरुष		(तथा)
कैः लिंगैः	= किन किन लक्षणोंसे (युक्त)	प्रभो	= हे प्रभो
भवति	= होता है ?		

स्थूल शरीर प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंका ही कार्य है इसलिये इन तीनों गुणोंको इसकी उत्पत्तिका कारण कहा है।

(मनुष्य)
कथम् = किस उपायसे
एतान् = इन
त्रीन् = तीनों
गुणान् = गुणोंसे
अतिवर्त्तते = अतीत होता है ?

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

प्रकाशम्, च, प्रवृत्तिम्, च, मोहम्, एव, च, पांडव, न, द्वेष्टि, संप्रवृत्तानि, न, निवृत्तानि, कांक्षति ॥२२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—

पांडव = हे अर्जुन
(जो पुरुष)
प्रकाशम् = सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको*
च = और
प्रवृत्तिम् = रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको
च = तथा
मोहम् = तमोगुणके कार्यरूप मोहको †
एव = भी
न = न तो
संप्रवृत्तानि = प्रवृत्त होनेपर

---

* अन्तःकरण और इन्द्रियादिकोंमें आलस्यका अभाव होकर जो एक प्रकारकी चेतनता होती है उसका नाम प्रकाश है ।

† निद्रा और आलस्य आदिकी बाहुल्यतासे अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतन शक्तिके लय होनेको यहां मोह नामसे समझना चाहिये ।

द्वेष्टि	= बुरा समझता है	निवृत्तानि	= निवृत्त होनेपर (उनकी)
च	= और	काङ्क्षति	= आकांक्षा करता है* ॥
न	= न		

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्त्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥२३॥

उदासीनवत्, आसीनः, गुणैः, यः, न, विचाल्यते, गुणाः, वर्त्तन्ते, इति, एव, यः, अवतिष्ठति, न, इंगते ॥

तथा–

यः	= जो	गुणाः एव	= गुण ही गुणोंमें
उदासीनवत्	= साक्षीके सदृश	वर्त्तन्ते	= वर्त्तते हैं †
आसीनः	= स्थित हुआ	इति	= ऐसा (समझता हुआ)
गुणैः	= गुणोंके द्वारा	यः	= जो (सच्चिदानंदघन परमात्मामें एकीभावसे)
न विचाल्यते	= विचलित नहीं किया जा सकता है (और)		

* जो पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही नित्य एकीभावसे स्थित हुआ इस त्रिगुणमयी मायाके प्रपंचरूप संसारसे सर्वथा अतीत हो गया है उस गुणातीत पुरुषके अभिमान रहित अन्तःकरणमें तीनों गुणोंके कार्यरूप प्रकाश प्रवृत्ति और मोहादि वृत्तियोंके प्रकट होने और न होनेपर किसीकालमें भी इच्छा द्वेष आदि विकार नहीं होते हैं यह ही उसके गुणोंसे अतीत होनेके प्रधान लक्षण हैं ।

† इसी अध्यायके श्लोक १९ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

अव-तिष्ठति	=	स्थित रहता है (एवं)	न इंगते	=	उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता है ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः

समदुःखसुखः, स्वस्थः, समलोष्टाश्मकांचनः, तुल्यप्रियाप्रियः, धीरः, तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

और जो-

स्वस्थः	=	निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ	धीरः	=	धैर्यवान् है (तथा)
समदुःख-सुखः	=	दुःखसुखको समान समझनेवाला है (तथा)	तुल्यप्रियाप्रियः	=	जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है (और)
समलोष्टाश्म-कांचनः	=	मिट्टी पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला (और)	तुल्यनिन्दात्म-संस्तुतिः	=	अपनी निन्दा स्तुतिमें भी समान भाववाला है॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५

मानापमानयोः, तुल्यः, तुल्यः, मित्रारिपक्षयोः, सर्वारंभ-परित्यागी, गुणातीतः, सः, उच्यते ॥

तथा जो—

मानापमानयोः	= मान और अपमानमें	सर्वारंभपरित्यागी	= संपूर्ण आरंभोंमें कर्त्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष
तुल्यः	= सम है (एवं)	गुणातीतः	= गुणातीत
मित्रारिपक्षयोः	= मित्र और वैरीके पक्षमें (भी)	उच्यते	= कहा जाता है॥
तुल्यः	= सम है		
सः	= वह		

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

माम्, च, यः, अव्यभिचारेण, भक्तियोगेन, सेवते, सः, गुणान्, समतीत्य, एतान्, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥२६॥

च	= और	भक्तियोगेन	= भक्तिरूप योगके द्वारा*
यः	= जो पुरुष	माम्	= मेरेको
अव्यभिचारेण	= अव्यभिचारी	सेवते	= निरन्तर भजता है

* केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर वासुदेव भगवान्को ही अपना स्वामी मानता हुआ स्वार्थ और अभिमानको त्यागकर श्रद्धा और भावके सहित परम प्रेमसे निरंतर चिंतन करनेको अव्यभिचारी भक्ति-योग कहते हैं।

सः =वह
एतान् =इन तीनों
गुणान् =गुणोंको
समतीत्य =अच्छी प्रकार उल्लंघनकरके
ब्रह्मभूयाय =सच्चिदानंदघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
कल्पते =योग्य होता है॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च॥

ब्रह्मणः, हि, प्रतिष्ठा, अहम्, अमृतस्य, अव्ययस्य, च, शाश्वतस्य, च, धर्मस्य, सुखस्य ऐकांतिकस्य, च ॥२७॥

तथा हे अर्जुन उस–

अव्ययस्य =अविनाशी
ब्रह्मणः =परब्रह्मका
च =और
अमृतस्य =अमृतका
च =तथा
शाश्वतस्य =नित्य
धर्मस्य =धर्मका
च =और
ऐकांतिकस्य =अखण्ड एकरस
सुखस्य =आनन्दका
अहम् हि =मैं ही
प्रतिष्ठा =आश्रय हूं–

अर्थात् उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख, यह सब मेरे ही नाम हैं इसलिये इनका मैं परम आश्रय हूं ॥

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ॐ

श्रीपरमात्मनेनमः

अथ पंचदशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्, छंदांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, सः, वेदवित् ॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन—

ऊर्ध्व-मूलम्	=	आदिपुरुष* परमेश्वररूप मूलवाले (और)	अधः-शाखम्	=	ब्रह्मारूप† मुख्य शाखा-वाले (जिस)

---

* आदिपुरुष नारायण वासुदेव भगवान् ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होनेके कारण और सबसे ऊपर नित्यधाममें सगुणरूपसे वास करनेके कारण ऊर्ध्वनामसे कहे गये हैं और वे मायापति सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसाररूप वृक्षके कारण हैं इसलिये इस संसारवृक्षको ऊर्ध्वमूलवाला कहते हैं ।

† उस आदिपुरुष परमेश्वरसे उत्पत्तिवाला होनेके कारण तथा नित्यधामसे नीचे ब्रह्मलोकमें वास करनेके कारण हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माको परमेश्वरकी अपेक्षा अधः कहा है और वही इस संसारका विस्तार करनेवाला होनेसे इसकी मुख्य शाखा है इसलिये इस संसारवृक्षको अधःशाखावाला कहते हैं ।

अश्वत्थम् =	संसाररूप पीपलके वृक्षको		तम् =	उस संसार-रूप वृक्षको
अव्ययम् =	अविनाशी*		यः =	जो पुरुष (मूल सहित)
प्राहुः =	कहते हैं (तथा)		वेद =	तत्त्वसे जानता है
यस्य =	जिसके		सः =	वह
छन्दांसि =	वेद†		वेदवित् =	वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है‡ ॥
पर्णानि =	पत्ते (कहे गये हैं)			

अधश्चोर्ध्वम्प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥२॥

---

* इस वृक्षका मूलकारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकालसे इसकी परम्परा चली आती है इसलिये इस संसारवृक्षको अविनाशी कहते हैं ।

† इस वृक्षकी शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मोंके द्वारा इस संसारवृक्षकी रक्षा और वृद्धिके करनेवाले एवं शोभाको बढ़ानेवाले होनेसे वेद पत्ते कहे गये हैं ।

‡ भगवान्‌की योगमायासे उत्पन्न हुआ संसार क्षणभंगुर, नाशवान् और दुःखरूप है। इसके चिंतनको त्यागकर केवल परमेश्वरका ही नित्य निरन्तर अनन्य प्रेमसे चिंतन करना वेदके तात्पर्यको जानना है ।

अधः, च, ऊर्ध्वम्, प्रसृताः, तस्य, शाखाः, गुणप्रवृद्धाः, विषयप्रवालाः, अधः, च, मूलानि, अनुसंततानि, कर्मानुबंधीनि, मनुष्यलोके ॥

और हे अर्जुन–

तस्य	= उस संसार वृक्षकी	अधः	= नीचे
		च	= और
गुणप्रवृद्धाः	= तीनोंगुणरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं	ऊर्ध्वम्	= ऊपर सर्वत्र
		प्रसृताः	= फैली हुई हैं (तथा)
विषयप्रवालाः	= विषय*भोगरूप कोंपलोंवाली	मनुष्यलोके	= मनुष्य योनिमें‡
		कर्मानुबंधीनि	= कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली
शाखाः	= देव मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखायें†	मूलानि	= अहंताममता और वासनारूप जड़ें

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह पांचों स्थूल देह और इंद्रियोंकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेके कारण उन शाखाओंकी कोंपलोंकेरूपमें कहे गये हैं।

† मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे संपूर्ण लोकोंके सहित देव मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंकी उत्पत्ति और विस्तार हुआ है इसलिये उनका यहां शाखाओंके रूपमें वर्णन किया है।

‡ अहंता ममता और वासनारूप मूलोंको केवल मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बांधनेवाली कहनेका कारण यह है कि अन्य सब योनियोंमें तो

(अपि)	=भी	(ऊर्ध्वम्)	=ऊपर
अधः	=नीचे	अनुसंत-तानि	=सभी लोकोंमें व्याप्त होरहीहैं
च	=और		

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥३॥

न, रूपम्, अस्य, इह, तथा, उपलभ्यते, न, अंतः, न, च, आदिः, न, च, संप्रतिष्ठा, अश्वत्थम्, एनम्, सुविरूढमूलम्, असंगशस्त्रेण, दृढेन, छित्त्वा ॥

परन्तु–

अस्य	=इस संसार वृक्षका	न	=नहीं
रूपम्	=स्वरूप (जैसा कहाहै)	उपलभ्यते	=पाया जाता है*
तथा	=वैसा	(यतः)	=क्योंकि
इह	=यहां (विचारकालमें)	न	=न (तो इसकी)
		आदिः	=आदि है†

केवल पूर्वकृत कर्मोंके फलको भोगनेका ही अधिकार है और मनुष्ययोनिमें नवीन कर्मोंके करनेका भी अधिकार है ।

* इस संसारका जैसा स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है और जैसा देखा सुना जाता है वैसा तत्त्वज्ञान होनेके उपरान्त नहीं पाया जाता जिस प्रकार आंख खुलनेके उपरान्त स्वप्नका संसार नहीं पाया जाता ।

† इसका आदि नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबसे चली आती है इसका कोई पता नहीं है ।

च = और
न = न
अंतः = अन्त है*
च = तथा
न = न
संप्रतिष्ठा = अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है†
(अतः) = इसलिये
एनम् = इस
सुविरूढमूलम् = अहंताममता और वासनारूप अतिदृढ़ मूलोंवाले
अश्वत्थम् = संसाररूप पीपलके वृक्षको
दृढेन = दृढ़
असंगशस्त्रेण = वैराग्यरूप‡ शस्त्र द्वारा
छित्त्वा = काटकर§ ॥

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्त्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषम्प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

* इसका अन्त नहीं है यह कहनेका प्रयोजन यह है कि इसकी परम्परा कबतक चलती रहेगी इसका कोई पता नहीं है।

† इसकी अच्छी प्रकार स्थिति भी नहीं है यह कहनेका यह प्रयोजन है कि वास्तवमें यह क्षणभंगुर और नाशवान् है।

‡ ब्रह्मलोक तकके भोग क्षणिक और नाशवान् हैं ऐसा समझकर इस संसारके समस्त विषय भोगोंमें सत्ता, सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना ही दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र है।

§ स्थावर जंगमरूप यावन्मात्र संसारके चिंतनका तथा अनादिकालसे अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका त्याग करना ही संसार वृक्षका अवान्तर मूलोंके सहित काटना है।

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्त्तन्ति, भूयः, तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्; प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी ॥

ततः	=उसके उपरांत	पुराणी	=पुरातन
तत्	=उस	प्रवृत्तिः	=संसार वृक्षकी प्रवृत्ति
पदम्	=परमपदरूप परमेश्वरको	प्रसृता	=विस्तारको प्राप्त हुई है
परिमार्गितव्यम्	=अच्छी प्रकार खोजना चाहिये कि	तम्	=उस
		एव	=ही
यस्मिन्	=जिसमें	आद्यम्	=आदि
गताः	=गये हुए पुरुष	पुरुषम्	=पुरुष नारायणके (मैं)
भूयः	=फिर		
न निवर्त्तन्ति	=पीछेसंसारमें नहीं आते हैं	प्रपद्ये	=शरण हूं (इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके) ॥
च	=और		
यतः	=जिस परमेश्वरसे (यह)		

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

निर्मानमोहाः, जितसंगदोषाः, अध्यात्मनित्याः, विनिवृत्तकामाः, द्वंद्वैः, विमुक्ताः, सुखदुःखसंज्ञैः, गच्छंति, अमूढाः, पदम्, अव्ययम्, तत् ॥

निर्मान-मोहाः = नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका (तथा)
जितसंग-दोषाः = जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिनने (और)
अध्यात्म-नित्याः = परमात्माके स्वरूपमें है निरन्तर स्थिति जिनकी (तथा)
विनिवृत्त-कामाः = अच्छीप्रकारसे नष्ट होगई है कामना जिनकी (ऐसे वे)
सुखदुःख-संज्ञैः = सुखदुःख नामक
द्वंद्वैः = द्वंद्वोंसे
विमुक्ताः = विमुक्त हुए
अमूढाः = ज्ञानीजन
तत् = उस
अव्ययम् = अविनाशी
पदम् = परमपदको
गच्छंति = प्राप्त होते हैं ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशांकः, न, पावकः, यत्, गत्वा, न, निवर्त्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥

और—

तत् = उस (स्वयं प्रकाशमय परमपदको)
न = न
सूर्यः = सूर्य

भासयते	= प्रकाशितकर सकता है	यत्	= जिस परम-पदको
न	= न	गत्वा	= प्राप्त होकर (मनुष्य)
शशांकः	= चन्द्रमा (और)	न निवर्तन्ते	= पीछे संसारमें नहीं आते हैं
न	= न	तत्	= वही
पावकः	= अग्नि ही	मम	= मेरा
(भासयते)	= प्रकाशित कर सकता है (तथा)	परमम्	= परम
		धाम	= धाम है* ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ७

मम, एव, अंशः, जीवलोके, जीवभूतः, सनातनः, मनःषष्ठानि, इन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि, कर्षति ॥

और हे अर्जुन-

जीवलोके	= इस देहमें	एव	= ही
जीवभूतः	= यह जीवात्मा	सनातनः	= सनातन
मम	= मेरा	अंशः	= अंश है †

* परमधामका अर्थ गीता अ० ८ श्लो० २१ में देखना चाहिये ।

† जैसे विभाग रहित स्थित हुआ भी महाकाश घटोंमें पृथक् पृथक्की भांति प्रतीत होता है वैसे ही सब भूतोंमें एकीरूपसे स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक् पृथक्की भांति प्रतीत होता है इसीसे देहमें स्थित जीवात्माको भगवान्ने अपना सनातन अंश कहा है ।

	(और वही इन)	मनः-षष्ठानि = मन सहित पांचों
प्रकृति-स्थानि	= त्रिगुणमयी मायामें स्थित हुई	इंद्रियाणि = इन्द्रियोंको
		कर्षति = आकर्षण करता है ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ८

शरीरम्, यत्, अवाप्नोति, यत्, च, अपि, उत्क्रामति, ईश्वरः, गृहीत्वा, एतानि, संयाति, वायुः, गंधान्, इव, आशयात् ॥

कैसे कि—

वायुः = वायु	उत्क्रामति = त्यागता है
आशयात् = गंधके स्थानसे	(तस्मात्) = उससे
गंधान् = गंधको	एतानि = इन मन सहित इंद्रियोंको
इव = जैसे (ग्रहण करके ले जाता है वैसे ही)	गृहीत्वा = ग्रहण करके
	च = फिर
ईश्वरः = देहादिकोंका स्वामी जीवात्मा	यत् = जिस
	शरीरम् = शरीरको
	अवाप्नोति = प्राप्त होता है
अपि = भी	(तस्मिन्) = उसमें
यत् (शरीरम्) = जिस पहिले शरीरको	संयाति = जाता है ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

श्रोत्रम्, चक्षुः, स्पर्शनम्, च, रसनम्, घ्राणम्, एव, च, अधिष्ठाय, मनः, च, अयम्, विषयान्, उपसेवते ॥

और उस शरीरमें स्थित हुआ—

अयम्	=यह जीवात्मा	च	=और
श्रोत्रम्	=श्रोत्र	मनः	=मनको
चक्षुः	=चक्षु	अधिष्ठाय	=आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे
च	=और		
स्पर्शनम्	=त्वचाको		
च	=तथा	एव	=ही
रसनम्	=रसना	विषयान्	=विषयोंको
घ्राणम्	=घ्राण	उपसेवते	=सेवन करता है

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः १०

उत्क्रामन्तम्, स्थितम्, वा, अपि, भुंजानम्, वा, गुणान्वितम्, विमूढाः, न, अनुपश्यंति, पश्यंति, ज्ञानचक्षुषः ॥

परन्तु—

उत्क्रामन्तम्	=शरीर छोड़कर जाते हुएको	स्थितम्	=शरीरमें स्थित हुएको (और)
वा	=अथवा	भुंजानम्	=विषयोंको भोगते हुएको

वा = अथवा
गुणान्वितम् = तीनों गुणोंसे युक्त हुएको
अपि = भी
विमूढाः = अज्ञानीजन
न = नहीं
अनुपश्यंति = जानते हैं
(केवल)
ज्ञानचक्षुषः = ज्ञानरूप नेत्रोंवाले
(ज्ञानीजन ही)
पश्यंति = तत्त्वसे जानते हैं ॥

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम्
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ११

यतंतः, योगिनः, च, एनम्, पश्यंति, आत्मनि, अवस्थितम्, यतंतः, अपि, अकृतात्मानः, न, एनम्, पश्यंति, अचेतसः ॥

क्योंकि—

योगिनः = योगीजन
(भी)
आत्मनि = अपने हृदयमें
अवस्थितम् = स्थित हुए
एनम् = इस आत्माको
यतंतः = यत्न करते हुए ही
पश्यंति = तत्त्वसे जानते हैं
च = और
अकृतात्मानः = जिन्होंने अपने अंतःकरणको शुद्ध नहीं किया है (ऐसे)
अचेतसः = अज्ञानीजन
(तो)
यतंतः = यत्न करते हुए
अपि = भी
एनम् = इस आत्माको
न = नहीं
पश्यंति = जानते हैं ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चंद्रमसियच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् १२

यत् , आदित्यगतम् , तेजः, जगत् , भासयते, अखिलम् ; यत् , चन्द्रमसि, यत् , च, अग्नौ, तत् , तेजः, विद्धि, मामकम् ॥

और हे अर्जुन–

यत्	= जो	चन्द्रमसि	= चन्द्रमामें स्थित है
तेजः	= तेज		(और)
आदित्यगतम्	= सूर्यमें स्थित हुआ	यत्	= जो तेज
अखिलम्	= संपूर्ण	अग्नौ	= अग्निमें (स्थित है)
जगत्	= जगतको	तत्	= उसको (तूं)
भासयते	= प्रकाशित करता है	मामकम्	= मेरा ही
च	= तथा	तेजः	= तेज
यत्	= जो तेज	विद्धि	= जान ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीःसर्वाःसोमो भूत्वारसात्मकः

गाम् , आविश्य, च, भूतानि, धारयामि, अहम् , ओजसा, पुष्णामि, च, औषधीः, सर्वाः, सोमः, भूत्वा, रसात्मकः ॥ १३ ॥

च	= और	गाम्	= पृथिवीमें
अहम्	= मैं ही	आविश्य	= प्रवेश करके

ओजसा =अपनी शक्तिसे
भूतानि =सब भूतोंको
धारयामि =धारण करताहूं
च =और
रसात्मकः =रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय
सोमः =चन्द्रमा
भूत्वा =होकर
सर्वाः =संपूर्ण
ओषधीः =ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको
पुष्णामि =पुष्ट करता हूं॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नं चतुर्विधम् १४

अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः, प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम् ॥

तथा—

अहम् =मैं ही
प्राणिनाम् =सब प्राणियोंके
देहम् =शरीरमें
आश्रितः =स्थित हुआ
वैश्वानरः =वैश्वानर अग्निरूप
भूत्वा =होकर
प्राणापानसमायुक्तः =प्राण और अपानसे युक्त हुआ
चतुर्विधम् =चार* प्रकारके
अन्नम् =अन्नको
पचामि =पचाता हूं ॥

* भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य ऐसे चार प्रकारके अन्न होते हैं उनमें जो चबाकर खाया जाता है वह भक्ष्य है जैसे रोटी आदि और जो निगला जाता है वह भोज्य है जैसे दूध आदि तथा जो चाटा जाता है वह लेह्य है जैसे चटनी आदि और जो चूसा जाता है वह चोष्य है जैसे ऊख आदि ।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

सर्वस्य, च, अहम्, हृदि, सन्निविष्टः, मत्तः, स्मृतिः, ज्ञानम्, अपोहनम्, च, वेदैः, च, सर्वैः, अहम्, एव, वेद्यः, वेदांतकृत्, वेदवित्, एव, च, अहम् ॥

च	=और
अहम्	=मैं ही
सर्वस्य	=सबप्राणियोंके
हृदि	=हृदयमें
संनिविष्टः	=अंतर्यामीरूपसे स्थित हूं (तथा)
मत्तः	=मेरेसे ही
स्मृतिः	=स्मृति
ज्ञानम्	=ज्ञान
च	=और
अपोहनम्	=अपोहन*
(भवति)	=होता है
च	=और
सर्वैः	=सब
वेदैः	=वेदों द्वारा
अहम्	=मैं
एव	=ही
वेद्यः	=जाननेके[†] योग्य हूं (तथा)

---

* विचारके द्वारा बुद्धिमें रहनेवाले संशय विपर्यय आदि दोषोंको हटानेका नाम अपोहन है ।

† सर्ववेदोंका तात्पर्य परमेश्वरको जनानेका है इसलिये सब वेदों द्वारा जाननेके योग्य एक परमेश्वर ही है ।

वेदांतकृत्	=वेदान्तका कर्त्ता		(भी)
च	=और	अहम्	=मैं
वेदवित्	=वेदोंको जाननेवाला	एव	=ही (हूं)॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते १६

द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च, क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते॥

तथा हे अर्जुन–

लोके	=इस संसारमें	सर्वाणि	=संपूर्ण
क्षरः	=नाशवान्	भूतानि	=भूतप्राणियोंके शरीर तो
च	=और		
अक्षरः	=अविनाशी	क्षरः	=नाशवान्
एव	=भी	च	=और
इमौ	=यह	कूटस्थः	=जीवात्मा
द्वौ	=दो प्रकारके*	अक्षरः	=अविनाशी
पुरुषौ	=पुरुष हैं (उनमें)	उच्यते	=कहा गया है॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः १७

* गी० अध्याय ७ श्लो० ४–५ में जो अपरा और परा प्रकृतिके नामसे कहे गये हैं तथा अ० १३ श्लो०१ में जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके नामसे कहे गये हैं उन्हीं दोनोंको यहां क्षर और अक्षरके नामसे वर्णन किया है।

उत्तमः, पुरुषः, तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः, यः, लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः ॥

तथा उन दोनोंसे-

उत्तमः	=उत्तम	बिभर्ति	=सबका धारण पोषणकरता है (एवं)
पुरुषः	=पुरुष	अव्ययः	=अविनाशी
तु	=तो	ईश्वरः	=परमेश्वर (और)
अन्यः	=अन्य ही है (कि)	परमात्मा	=परमात्मा
यः	=जो	इति	=ऐसे
लोकत्रयम्	=तीनों लोकोंमें	उदाहृतः	=कहा गया है ॥
आविश्य	=प्रवेश करके		

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितःपुरुषोत्तमः ॥

यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः,अतः,अस्मि,लोके,वेदे,च,प्रथितः,पुरुषोत्तमः ॥१८

यस्मात्	=क्योंकि	अक्षरात्	=अविनाशी जीवात्मासे
अहम्	=मैं	अपि	=भी
क्षरम्	=नाशवान् जडवर्गक्षेत्रसेतो	उत्तमः	=उत्तम हूं
अतीतः	=सर्वथा अतीत हूं	अतः	=इसलिये
च	=और (मायामें स्थित)	लोके	=लोकमें
		च	=और
		वेदे	=वेदमें (भी)

पुरुषोत्तमः	=पुरुषोत्तम (नामसे)	प्रथितः	=प्रसिद्ध
		अस्मि	=हूं ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

यः, माम्, एवम्, असंमूढः, जानाति, पुरुषोत्तमम्, सः, सर्ववित्, भजति, माम्, सर्वभावेन, भारत ॥

भारत	=हे भारत	सः	=वह
एवम्	=इस प्रकार तत्त्वसे	सर्ववित्	=सर्वज्ञ पुरुष
यः	=जो	सर्वभावेन	=सब प्रकारसे निरन्तर
असंमूढः	=ज्ञानी पुरुष		
माम्	=मेरेको	माम्	=मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही
पुरुषोत्तमम्	=पुरुषोत्तम		
जानाति	=जानता है	भजति	=भजता है ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

इति, गुह्यतमम्, शास्त्रम्, इदम्, उक्तम्, मया, अनघ, एतत्, बुद्ध्वा, बुद्धिमान्, स्यात्, कृतकृत्यः, च, भारत ॥२०॥

अनघ	=हे निष्पाप	इति	=ऐसे
भारत	=अर्जुन	इदम्	=यह

गुह्यतमम् =	अति रहस्य-युक्त गोपनीय	बुद्ध्वा =	तत्त्वसे जान-कर (मनुष्य)
शास्त्रम् =	शास्त्र	बुद्धिमान् =	ज्ञानवान्
मया =	मेरे द्वारा	च =	और
उक्तम् =	कहा गया	कृतकृत्यः =	कृतार्थ
एतत् =	इसको	स्यात् =	हो जाता है-

अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता॥

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तम-योगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "पुरुषोत्तमयोग" नामक पन्द्रहवां अध्याय।

इस अध्यायमें भगवान्‌ने अपना परम गोपनीय प्रभाव भली प्रकारसे कहा है। जो मनुष्य उक्त प्रकारसे भगवान्‌को सर्वोत्तम समझ लेता है फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान्‌के चिन्तनका त्याग नहीं कर सकता क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य उत्तम समझता है उसीमें उसका प्रेम होता है और जिसमें प्रेम होता है उसीका चिन्तन होता है अतएव सबका मुख्य कर्तव्य है कि भगवान्‌के परम गोपनीय प्रभावको भली प्रकार समझनेके लिये नाशवान् क्षणभंगुर संसारकी आसक्तिका सर्वथा त्याग करके एवं परमात्माके शरण होकर भजन और सत्संगकी ही विशेष चेष्टा करें।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मनेनमः

अथ षोडशोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः, दानम्, दमः, च, यज्ञः, च, स्वाध्यायः, तपः, आर्जवम् ॥१॥

उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले हे अर्जुन दैवी सम्पदा जिन पुरुषोंको प्राप्त है तथा जिनको आसुरी सम्पदा प्राप्त है उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं उनमेंसे—

अभयम् =सर्वथा भयका अभाव

सत्त्वसंशुद्धिः =अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता

ज्ञानयोगव्यवस्थितिः =तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति*

च =और

दानम् =सात्त्विक दान† (तथा)

---

* परमात्माके स्वरूपको तत्त्वसे जाननेके लिये सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे ध्यानकी निरन्तर गाढ़स्थितिका ही नाम ज्ञानयोगव्यवस्थितिः समझना चाहिये।

† गीता अध्याय १७ श्लोक २० में जिसका विस्तार किया है।

दमः =इन्द्रियोंका दमन

यज्ञः ={भगवत् पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण (एवं)

स्वाध्यायः ={वेद शास्त्रोंके पठनपाठन पूर्वक भगवत्के नाम और गुणोंका कीर्त्तन

च =तथा

तपः =स्वधर्म पालनके लिये कष्ट सहन करना(एवं)

आर्जवम् ={शरीर और इंद्रियोंके सहित अंतःकरणकी सरलता ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥२

अहिंसा, सत्यम्, अक्रोधः, त्यागः, शांतिः, अपैशुनम्, दया, भूतेषु, अलोलुप्त्वम्, मार्दवम्, ह्रीः, अचापलम् ॥

तथा–

अहिंसा ={मन वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना (तथा)

सत्यम् =यथार्थ और प्रिय भाषण*

अक्रोधः ={अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना

त्यागः =कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका त्याग(एवं)

---

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसेका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहनेका नाम सत्यभाषण है।

शांतिः =अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव (और)
अपैशुनम् =किसीकी भी निन्दादि न करना (तथा)
भूतेषु =सब भूतप्राणियोंमें
दया =हेतु रहित दया
अलोलुप्त्वम् = { इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना (और)
मार्दवम् =कोमलता (तथा)
ह्रीः = { लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा (और)
अचापलम् =व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव ॥

तेजः क्षमा धृतिःशौचमद्रोहो नातिमानिता
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

तेजः, क्षमा, धृतिः, शौचम्, अद्रोहः, नातिमानिता, भवंति, संपदम्, दैवीम्, अभिजातस्य, भारत ॥

तथा–

तेजः =तेज *
क्षमा =क्षमा
धृतिः =धैर्य (और)
शौचम् = { बाहर भीतरकी शुद्धि† (एवं)

* श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत हो जाते हैं।

† गीता, अध्याय १३ श्लोक ७ की टिप्पणी देखनी चाहिये।

अद्रोहः	= किसीमें भी शत्रुभावका न होना			(यह सब तो)
	(और)	भारत	=	हे अर्जुन
		दैवीम्	=	दैवी
		संपदम्	=	संपदाको
नातिमा-निता	= अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव	अभिजा-तस्य	=	प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण
		भवन्ति	=	हैं ॥

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

दंभः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च, अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, संपदम्, आसुरीम् ॥४॥

और—

पार्थ	= हे पार्थ	पारुष्यम्	= कठोरवाणी (एवं)
दंभः	= पाखंड		
दर्पः	= घमंड	अज्ञानम्	= अज्ञान
च	= और	एव	= भी (यह सब)
अभिमानः	= अभिमान	आसुरीम्	= आसुरी
च	= तथा	संपदम्	= संपदाको
क्रोधः	= क्रोध	अभिजा-तस्य	= प्राप्त हुए पुरुषके (लक्षण हैं)
च	= और		

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव॥

दैवीसंपत्, विमोक्षाय, निबंधाय, आसुरी, मता, मा, शुचः, संपदम्, दैवीम्, अभिजातः, असि, पांडव ॥५॥

उन दोनों प्रकारकी संपदाओंमें—

दैवीसंपत्	=दैवी संपदा तो	पांडव	=हे अर्जुन(तू)
विमोक्षाय	=मुक्तिके लिये (और)	मा शुचः	=शोच मतकर
आसुरी	=आसुरी (संपदा)	(यतः)	=क्योंकि(तू)
		दैवीम्	=दैवी
निबंधाय	=बांधनेके लिये	संपदम्	=संपदाको
मता	=मानी गई है	अभिजातः	=प्राप्त हुआ
(अतः)	=इसलिये	असि	=है ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

द्वौ, भूतसर्गौ, लोके, अस्मिन्, दैवः, आसुरः, एव, च, दैवः, विस्तरशः, प्रोक्तः, आसुरम्, पार्थ, मे, शृणु ॥

और—

पार्थ	=हे अर्जुन		(एक तो)
अस्मिन्	=इस	दैवः	=देवोंके जैसा
लोके	=लोकमें	च	=और (दूसरा)
भूतसर्गौ	=भूतोंके स्वभाव	आसुरः	=असुरोंके जैसा
द्वौ	=दो प्रकारके		(उनमें)
(मतौ)	=माने गये हैं	दैवः	=देवोंका स्वभाव

एव = ही	आसुरम् = {असुरोंके स्वभावको (भी) विस्तार पूर्वक
विस्तरशः = विस्तार पूर्वक	मे = मेरेसे
प्रोक्तः = कहा गया है	शृणु = सुन ॥
(अतः) = इसलिये (अब)	

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, जनाः, न, विदुः, आसुराः, न, शौचम्, न, अपि, च, आचारः, न, सत्यम्, तेषु, विद्यते ॥

हे अर्जुन–

आसुराः = {आसुरी स्वभाववाले	तेषु = उनमें
जनाः = मनुष्य	न = न (तो)
प्रवृत्तिम् = {कर्त्तव्य कार्यमें प्रवृत्त होनेको	शौचम् = {बाहर भीतर-की शुद्धि है
च = और	न = न
निवृत्तिम् = {अकर्त्तव्य कार्यसे निवृत्त होनेको	आचारः = {श्रेष्ठ आचरण है
च = भी	च = और
न = नहीं	न = न
विदुः = जानते हैं (इसलिये)	सत्यम् = सत्य भाषण
	अपि = ही
	विद्यते = है ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥८॥

असत्यम्, अप्रतिष्ठम्, ते, जगत्, आहुः, अनीश्वरम्, अपरस्परसंभूतम्, किम्, अन्यत्, कामहैतुकम् ॥

तथा–

ते = वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य
आहुः = कहते हैं (कि)
जगत् = जगत
अप्रतिष्ठम् = आश्रय रहित (और)
असत्यम् = सर्वथा झूठा (एवं)
अनीश्वरम् = बिना ईश्वरके
अपरस्परसंभूतम् = अपने आप स्त्री पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है
(अतः) = इसलिये
कामहैतुकम् = केवल भोगों-को भोगनेके लिये
(एव) = ही (है)
अन्यत् = इसके सिवाय और
किम् = क्या है ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

एताम्, दृष्टिम्, अवष्टभ्य, नष्टात्मानः, अल्पबुद्धयः, प्रभवंति, उग्रकर्माणः, क्षयाय, जगतः, अहिताः ॥

इस प्रकार–

एताम् = इस
दृष्टिम् = मिथ्याज्ञानको

अवष्टभ्य = अवलंबन करके	अहिताः = सबका अपकार करनेवाले
नष्टात्मानः = नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका (तथा)	उग्रकर्माणः = क्रूर कर्मी मनुष्य (केवल)
	जगतः = जगतका
अल्पबुद्धयः = मन्द है बुद्धि जिनकी (ऐसे वे)	क्षयाय = नाश करनेके लिये ही
	प्रभवंति = उत्पन्न होते हैं ।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः

काममू, आश्रित्य, दुष्पूरम्, दंभमानमदान्विताः, मोहात्, गृहीत्वा, असद्ग्राहान्, प्रवर्तन्ते, अशुचिव्रताः ॥१०॥

और वे मनुष्य-

दंभमानमदान्विताः = दंभ मान और मदसे युक्त हुए	मोहात् = अज्ञानसे
	असद्ग्राहान् = मिथ्या सिद्धान्तोंको
दुष्पूरम् = किसी प्रकार भी न पूर्ण होनेवाली	गृहीत्वा = ग्रहण करके
कामम् = कामनाओंका	अशुचिव्रताः = भ्रष्ट आचरणोंसे युक्त हुए (संसारमें)
आश्रित्य = आसरा लेकर (तथा)	प्रवर्तन्ते = वर्तते हैं ॥

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ११

चिंताम्, अपरिमेयाम्, च, प्रलयांताम्, उपाश्रिताः, कामोपभोगपरमाः, एतावत्, इति, निश्चिताः ॥

तथा वे—

प्रलयांताम्	= मरण पर्यन्त रहनेवाली	कामोपभोगपरमाः	= विषय भोगों के भोगनेमें तत्पर हुए
अपरिमेयाम्	= अनन्त		(एवं)
चिन्ताम्	= चिन्ताओंको	एतावत्	= इतना मात्र ही आनन्द है
उपाश्रिताः	= आश्रय किये हुए	इति	= ऐसे
च	= और	निश्चिताः	= माननेवाले हैं॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् १२

आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः, ईहंते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसंचयान् ॥

इसलिये—

आशापाशशतैः	= आशारूप सैंकड़ों फांसियोंसे		(और)
		कामक्रोधपरायणाः	= काम क्रोधके परायण हुए
बद्धाः	= बन्धे हुए		

कामभो-गार्थम्	= विषय भोगोंकी पूर्तिके लिये	अर्थसंचयान्	= धनादिक बहुतसे पदार्थोंको (संग्रह करनेकी)
अन्यायेन	= अन्याय पूर्वक	ईहन्ते	= चेष्टा करते हैं ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥१३

इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्, इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्॥

और उन पुरुषोंके विचार इस प्रकारके होते हैं कि—

मया	= मैंने	मे	= मेरे पास
अद्य	= आज	इदम्	= यह(इतना)
इदम्	= यह तो	धनम्	= धन
लब्धम्	= पाया है (और)	अस्ति	= है (और)
इमम्	= इस	पुनः	= फिर
मनोरथम्	= मनोरथको	अपि	= भी
प्राप्स्ये	= प्राप्त होऊंगा (तथा)	इदम्	= यह
		भविष्यति	= होवेगा ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी १४

असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि, ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी॥

तथा—

असौ	=वह	ईश्वरः	=ईश्वर
शत्रुः	=शत्रु	च	=और
मया	=मेरे द्वारा	भोगी	=ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूं (और)
हतः	=मारा गया (और)	अहम्	=मैं
अपरान्	=दूसरे शत्रुओंको	सिद्धः	=सब सिद्धियोंसे युक्त (एवं)
अपि	=भी		
अहम्	=मैं		
हनिष्ये	=मारूंगा (तथा)	बलवान्	=बलवान् (और)
अहम्	=मैं	सुखी	=सुखी हूं ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि
कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य
इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

आढ्यः, अभिजनवान्, अस्मि, कः, अन्यः, अस्ति, सदृशः, मया, यक्ष्ये, दास्यामि, मोदिष्ये, इति, अज्ञानविमोहिताः ॥

तथा मैं—

आढ्यः	=बड़ा धनवान् (और)	अभिजनवान्	=बड़े कुटुंबवाला

अस्मि = हूं	दास्यामि = दान देऊंगा
मया = मेरे	मोदिष्ये = हर्षको प्राप्त होऊंगा
सदृशः = समान	इति = इस प्रकारके
अन्यः = दूसरा	अज्ञानविमोहिताः = अज्ञानसे मोहित हैं ॥
कः = कौन	
अस्ति = है (मैं)	
यक्ष्ये = यज्ञ करूंगा	

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥१६

अनेकचित्तविभ्रांताः, मोहजालसमावृताः, प्रसक्ताः, कामभोगेषु, पतंति, नरके, अशुचौ ॥

इसलिये वे–

अनेकचित्तविभ्रान्ताः = अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्तवाले (अज्ञानीजन)	कामभोगेषु = विषयभोगोंमें
मोहजालसमावृताः = मोहरूप जालमें फंसे हुए (एवं)	प्रसक्ताः = अत्यन्त आसक्त हुए
	अशुचौ = महान् अपवित्र
	नरके = नरकमें
	पतन्ति = गिरते हैं ॥

आत्मसंभाविताःस्तब्धा धनमानमदान्विताः
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥१७

आत्मसंभाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः, यजंते, नामयज्ञैः, ते, दंभेन, अविधिपूर्वकम् ॥

तथा—

ते = वे

आत्मसंभाविताः = अपने आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले

स्तब्धाः = घमंडी पुरुष

धनमानमदान्विताः = धन और मानके मदसे युक्त हुए

अविधिपूर्वकम् = शास्त्र विधिसे रहित

नामयज्ञैः = केवल नाममात्रके यज्ञों द्वारा

दंभेन = पाखंडसे

यजन्ते = यजन करते हैं॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः, माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषंतः, अभ्यसूयकाः ॥

तथा वे—

अहंकारम् = अहंकार

बलम् = बल

दर्पम् = घमंड

कामम् = कामना

च = और

क्रोधम् = क्रोधादिके

संश्रिताः = परायण हुए (एवं)

अभ्यसूयकाः = दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष

आत्मपरदेहेषु = अपने और दूसरोंके शरीरमें (स्थित)

माम् = मुझ अंतर्यामीसे

प्रद्विषंतः = द्वेष करनेवाले हैं ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥१९

तान्, अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्, क्षिपामि, अजस्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु॥

ऐसे–

तान्	=उन	संसारेषु	=संसारमें
द्विषतः	=द्वेष करनेवाले	अजस्रम्	=बारम्बार
अशुभान्	=पापाचारी (और)	आसुरीषु	=आसुरी
		योनिषु	=योनियोंमें
क्रूरान्	=क्रूर कर्मी	एव	=ही
नराधमान्	=नराधमोंको	क्षिपामि	=गिराता हूं—
अहम्	=मैं		

अर्थात् शूकर कूकर आदिक नीच योनियोंमें ही उत्पन्न करता हूं॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम्॥

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि, माम्, अप्राप्य, एव, कौंतेय, ततः, यांति, अधमाम्, गतिम्॥२०

इसलिये–

कौंतेय	=हे अर्जुन	जन्मनि	=जन्ममें
मूढाः	=वे मूढ़ पुरुष	आसुरीम्	=आसुरी
जन्मनि	=जन्म	योनिम्	=योनिको

आपन्नाः =प्राप्त हुए
माम् =मेरेको
अप्राप्य =न प्राप्त होकर
ततः =उससे भी
अधमाम् =अति नीच
गतिम्=गतिको
एव =ही
यांति =प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत्

त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः,
कामः,क्रोधः,तथा,लोभः,तस्मात्,एतत्,त्रयम्,त्यजेत्।२१

और हे अर्जुन–

कामः =काम
क्रोधः =क्रोध
तथा =तथा
लोभः =लोभ
इदम् =यह
त्रिविधम् =तीन प्रकारके
नरकस्य =नरकके
द्वारम् =द्वार*
आत्मनः =आत्माका
नाशनम् =नाश करनेवाले हैं अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं
तस्मात्=इससे
एतत् =इन
त्रयम् =तीनोंको
त्यजेत् =त्याग देना चाहिये ॥

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्

---

* सर्व अनर्थोंके मूल और नरककी प्राप्तिमें हेतु होनेसे यहां कामक्रोध और लोभको नरकका द्वार कहा है ।

एतैः, विमुक्तः, कौंतेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः, आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम् ॥२२॥

क्योंकि–

कौंतेय	=हे अर्जुन
एतैः	=इन
त्रिभिः	=तीनों
तमोद्वारैः	=नरकके द्वारोंसे
विमुक्तः	=मुक्त हुआ*
नरः	=पुरुष
आत्मनः	=अपने
श्रेयः	=कल्याणका
आचरति	=आचरण करता है†
ततः	=इससे (वह)
पराम्	=परम
गतिम्	=गतिको
याति	=जाता है अर्थात् मेरेको प्राप्त होताहै॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, वर्तते, कामकारतः, न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम् ॥२३॥

और–

यः	=जो पुरुष
शास्त्रविधिम्	=शास्त्रकी विधिको
उत्सृज्य	=त्यागकर
कामकारतः	=अपनी इच्छासे

---

* अर्थात् काम क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ।

† अपने उद्धारके लिये भगवत् आज्ञानुसार वर्तनाही अपने कल्याणका आचरण करना है।

त्रिविधा, भवति, श्रद्धा, देहिनाम्, सा, स्वभावजा, सात्त्विकी, राजसी,च,एव,तामसी,च, इति,ताम्,शृणु ॥२॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन-

देहिनाम्	=मनुष्योंकी	च	=तथा
सा	=वह(बिना शास्त्रीय संस्कारोंके केवल)	तामसी	=तामसी
		इति	=ऐसे
		त्रिविधा	=तीनों प्रकारकी
स्वभावजा	=स्वभावसे उत्पन्न हुई*	एव	=ही
श्रद्धा	=श्रद्धा	भवति	=होती है
सात्त्विकी	=सात्त्विकी	ताम्	=उसको (तूं)
च	=और	(मत्तः)	=मेरेसे
राजसी	=राजसी	शृणु	=सुन ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

सत्त्वानुरूपा, सर्वस्य, श्रद्धा, भवति, भारत, श्रद्धामयः, अयम्, पुरुषः, यः, यच्छ्रद्धः, सः, एव, सः ॥३॥

भारत	=हे भारत	सर्वस्य	=सभी मनुष्योंकी

* अनन्त जन्मोंमें किये हुए कर्मोंके संचित संस्कारोंसे उत्पन्न हुई श्रद्धा स्वभावजा श्रद्धा कही जाती है।

श्रद्धा	=श्रद्धा	(अतः)	=इसलिये
सत्त्वानु-रूपा	=उनके अंतः-करणके अनुरूप	यः	=जो पुरुष
भवति	=होती है(तथा)	यच्छ्रद्धः	=जैसी श्रद्धा-वाला है
अयम्	=यह	सः	=वह स्वयम्
पुरुषः	=पुरुष	एव	=भी
श्रद्धामयः	=श्रद्धामय है	सः	=वही है-

अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप है ॥

यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ४

यजंते, सात्त्विकाः, देवान्, यक्षरक्षांसि, राजसाः, प्रेतान्, भूतगणान्, च, अन्ये, यजंते, तामसाः, जनाः ॥

उनमें-

सात्त्विकाः	=सात्त्विक पुरुष (तो)		(तथा)
देवान्	=देवोंको	अन्ये	=अन्य (जो)
यजन्ते	=पूजते हैं(और)	तामसाः	=तामस
राजसाः	=राजस पुरुष	जनाः	=मनुष्य(हैं वे)
यक्षर-क्षांसि	=यक्ष और राक्षसोंको (पूजते हैं)	प्रेतान्	=प्रेत
		च	=और
		भूतगणान्	=भूतगणोंको
		यजन्ते	=पूजते हैं

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः।
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥५॥

अशास्त्रविहितम्, घोरम्, तप्यंते, ये, तपः, जनाः, दंभाहंकारसंयुक्ताः, कामरागबलान्विताः ॥

और हे अर्जुन—

ये	= जो	दंभाहंकारसंयुक्ताः	= दंभ और अहंकारसे युक्त (एवं)
जनाः	= मनुष्य	कामरागबलान्विताः	= कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं ॥
अशास्त्रविहितम्	= शास्त्र विधिसे रहित (केवलमनोकल्पित)		
घोरम्	= घोर		
तपः	= तपको		
तप्यंते	= तपते हैं (तथा)		

कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥

कर्षयंतः, शरीरस्थम्, भूतग्रामम्, अचेतसः, माम्, च, एव, अंतःशरीरस्थम्, तान्, विद्धि, आसुरनिश्चयान् ॥६॥

तथा जो—

शरीरस्थम्	= शरीररूपसे स्थित	भूतग्रामम्	= भूत समुदायको*

* अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकोंके रूपमें परिणत हुए आकाशादि पांच भूतोंको।

च	=और	तान्	=उन
अंतः-शरीरस्थम्	=अंतःकरणमें स्थित	अचेतसः	=अज्ञानियोंको (तू)
माम्	=मुझ अंतर्यामीको	आसुर-निश्चयान्	=आसुरी स्वभाववाले
एव	=भी	विद्धि	=जान ॥
कर्षयंतः	=कृश करनेवाले हैं*		

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु ॥

और हे अर्जुन जैसे श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है वैसे ही—

आहारः	=भोजन	प्रियः	=प्रिय
अपि	=भी	भवति	=होता है
सर्वस्य	=सबको (अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार)	तु	=और
		तथा	=वैसे ही
		यज्ञः	=यज्ञ
त्रिविधः	=तीन प्रकारका	तपः	=तप (और)

* शास्त्रसे विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणों द्वारा शरीरको सुखाना एवं भगवान्के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्माको कृश करना है ।

दानम्	=दान भी (तीन तीन प्रकारके होते हैं)	इमम्	=इस
तेषाम्	=उनके	भेदम्	=न्यारे न्यारे भेदको (तूं मेरेसे)
		शृणु	=सुन ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराःसात्त्विकप्रियाः ॥८॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः ॥

आयुः	=आयु	स्थिराः	=स्थिर* रहनेवाले (तथा)
सत्त्व	=बुद्धि	हृद्याः	=स्वभावसे ही मनको प्रिय (ऐसे)
बल	=बल	आहाराः	=आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ (तो)
आरोग्य	=आरोग्यता	सात्त्विकप्रियाः	=सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं ॥
सुख	=सुख (और)		
प्रीति	=प्रीतिको		
विवर्धनाः	=बढ़ानेवाले (एवं)		
रस्याः	=रसयुक्त		
स्निग्धाः	=चिकने (और)		

* जिस भोजनका सार शरीरमें बहुत कालतक रहता है उसको स्थिर रहनेवाला कहते हैं ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ९

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः, आहाराः, राजसस्य, इष्टाः, दुःखशोकामयप्रदाः॥

और–

कटु	=कड़वे	दुःखशोकामयप्रदाः	=दुःख चिंता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले
अम्ल	=खट्टे	आहाराः	=आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ
लवण	=लवणयुक्त (और)	राजसस्य	=राजस पुरुषको
अतिउष्ण	=अतिगरम (तथा)	इष्टाः	=प्रिय होते हैं॥
तीक्ष्ण	=तीक्ष्ण		
रूक्ष	=रूखे (और)		
विदाहिनः	=दाहकारक (एवं)		

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्

यातयामम्, गतरसम्, पूति, पर्युषितम्, च, यत्, उच्छिष्टम्, अपि, च, अमेध्यम्, भोजनम्, तामसप्रियम्॥१०॥

तथा–

यत्	=जो	यातयामम्	=अधपका
भोजनम्	=भोजन	गतरसम्	=रस रहित

च	=और	अमेध्यम्	=अपवित्र
पूति	=दुर्गन्धयुक्त (एवं)	अपि	=भी है
पर्युषितम्	=बासी (और)	(तत्)	=वह(भोजन)
उच्छिष्टम्	=उच्छिष्ट है	तामस-प्रियम्	=तामस पुरुषको प्रिय होता है ॥
च	=तथा (जो)		

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥

अफलाकांक्षिभिः, यज्ञः, विधिदृष्टः, यः, इज्यते, यष्टव्यम्, एव, इति, मनः, समाधाय, सः, सात्त्विकः ॥११॥

और हे अर्जुन–

यः	=जो	मनः	=मनको
यज्ञः	=यज्ञ	समाधाय	=समाधान करके
विधिदृष्टः	=शास्त्र विधिसे नियत किया हुआ है (तथा)	अफलाकांक्षिभिः	=फलको न चाहनेवाले पुरुषों द्वारा
यष्टव्यम् एव	=करना ही कर्तव्य है	इज्यते	=किया जाता है
इति	=ऐसे	सः	=वह (यज्ञ तो)
		सात्त्विकः	=सात्त्विक है॥

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥१२॥

अभिसंधाय, तु, फलम्, दंभार्थम्, अपि, च, एव, यत्, इज्यते, भरतश्रेष्ठ, तम्, यज्ञम्, विद्धि, राजसम् ॥

तु = और	अपि = भी
भरतश्रेष्ठ = हे अर्जुन	अभिसंधाय = उद्देश्य रखकर
यत् = जो (यज्ञ)	इज्यते = किया जाता है
दंभार्थम् एव = केवल दंभाचरणके ही लिये	तम् = उस
च = अथवा	यज्ञम् = यज्ञको (तूं)
फलम् = फलको	राजसम् = राजस
	विद्धि = जान ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

विधिहीनम्, असृष्टान्नम्, मंत्रहीनम्, अदक्षिणम्, श्रद्धाविरहितम्, यज्ञम्, तामसम्, परिचक्षते ॥

तथा—

विधिहीनम् = शास्त्र विधिसे हीन (और)	अदक्षिणम् = बिना दक्षिणाके (और)
असृष्टान्नम् = अन्नदानसे रहित(एवं)	श्रद्धाविरहितम् = बिना श्रद्धाके किये हुए
मन्त्रहीनम् = बिना मन्त्रोंके	यज्ञम् = यज्ञको
	तामसम् = तामस (यज्ञ)
	परिचक्षते = कहते हैं ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्, शौचम्, आर्जवम्, ब्रह्मचर्यम्, अहिंसा, च, शारीरम्, तपः, उच्यते ॥

तथा हे अर्जुन-

देव	=देवता	ब्रह्मचर्यम्	=ब्रह्मचर्य
द्विज	=ब्राह्मण	च	=और
गुरु	=गुरु* और	अहिंसा	=अहिंसा (यह)
प्राज्ञ	=ज्ञानीजनोंका	शारीरम्	=शरीर संबंधी
पूजनम्	=पूजन (एवं)	तपः	=तप
शौचम्	=पवित्रता	उच्यते	=कहा गया है॥
आर्जवम्	=सरलता		

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते

अनुद्वेगकरम्, वाक्यम्, सत्यम्, प्रियहितम्, च, यत्, स्वाध्यायाभ्यसनम्, च, एव, वाङ्मयम्, तपः, उच्यते ॥१५॥

च	=तथा	प्रियहितम्	=प्रिय और हितकारक (एवं)
यत्	=जो	सत्यम्	=यथार्थ
अनुद्वेग-करम्	=उद्वेगको न करनेवाला		

---

* यहां गुरु शब्दसे माता, पिता, आचार्य और वृद्ध एवं अपनेसे जो किसी प्रकार भी बड़े हों उन सबको समझना चाहिये ।

वाक्यम् = भाषण है *
च = और (जो)
स्वाध्याय-अभ्यसनम् = वेद शास्त्रोंके पढ़नेका एवं परमेश्वरका नाम जपनेका अभ्यास है
(तत्) = वह
एव = निःसन्देह
वाङ्मयम् = वाणी संबंधी
तपः = तप
उच्यते = कहा गया है॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥१६॥

मनःप्रसादः, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रहः, भावसंशुद्धिः, इति, एतत्, तपः, मानसम्, उच्यते॥

तथा-

मनःप्रसादः = मनकी प्रसन्नता (और)
सौम्यत्वम् = शांतभाव (एवं)
मौनम् = भगवत् चिंतन करनेका स्वभाव
आत्मविनिग्रहः = मनका निग्रह
(और)
भावसंशुद्धिः = अंतःकरणकी पवित्रता
इति = ऐसे
एतत् = यह
मानसम् = मन संबंधी
तपः = तप
उच्यते = कहा गया है॥

*:मन और इन्द्रियों द्वारा जैसा अनुभव किया हो ठीक वैसाही कहनेका नाम यथार्थ भाषण है।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधंनरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥

श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः, अफलाकांक्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते ॥१७॥

परन्तु हे अर्जुन—

अफलाकांक्षिभिः	=फलको न चाहनेवाले	तप्तम्	=किये हुए
युक्तैः	=निष्कामीयोगी	तत्	=उस (पूर्वोक्त)
नरैः	=पुरुषों द्वारा	त्रिविधम्	=तीन प्रकारके
परया	=परम	तपः	=तपको (तो)
श्रद्धया	=श्रद्धासे	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
		परिचक्षते	=कहते हैं ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् १८

सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दंभेन, च, एव, यत्, क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम् ॥

च	=और	(वा)	=अथवा
यत्	=जो	दंभेन	=केवल पाखंडसे
तपः	=तप	एव	=ही
सत्कारमानपूजार्थम्	=सत्कार, मान और पूजाके लिये	क्रियते	=किया जाता है
		तत्	=वह

अध्रुवम् = अनिश्चित* (और)	(तप)
चलम् = { क्षणिक फलवाला	इह = यहां
	राजसम् = राजस
	प्रोक्तम् = कहा गया है ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् १९

मूढग्राहेण, आत्मनः, यत्, पीडया, क्रियते, तपः, परस्य, उत्सादनार्थम्, वा, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

और-

यत् = जो	परस्य = दूसरेका
तपः = तप	उत्सादनार्थम् = { अनिष्ट करनेके लिये
मूढग्राहेण = { मूढ़ता पूर्वक हठसे	क्रियते = किया जाता है
आत्मनः = { मन वाणी और शरीरकी	तत् = वह (तप)
	तामसम् = तामस
पीडया = पीड़ाके सहित	उदाहृतम् = कहा गया है ॥
वा = अथवा	

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्

दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम् ॥२०॥

---

* अनिश्चित फलवाला उसको कहते हैं कि जिसका फल होने न होनेमें शंका हो ।

च	=और (हे अर्जुन)	पात्रे	=पात्रके† प्राप्त होनेपर
दातव्यम्	=दान देना ही कर्तव्य है	अनुपकारिणे	=प्रति उपकार न करनेवालेके लिये
इति	=ऐसे भावसे	दीयते	=दिया जाता है
यत्	=जो	तत्	=वह
दानम्	=दान	दानम्	=दान (तो)
देशे	=देश*	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
काले	=काल*	स्मृतम्	=कहा गया है॥
च	=और		

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् २१

यत्, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः, दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्॥

तु	=और	यत्	=जो दान

* जिस देशकालमें जिस वस्तुका अभाव हो वही देशकाल उस वस्तु द्वारा प्राणियोंकी सेवा करनेके लिये योग्य समझा जाता है।

† भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी और असमर्थ तथा भिक्षु आदिक तो अन्न, वस्त्र और ओषधी एवं जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो उस वस्तु द्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं और श्रेष्ठ आचरणोंवाले विद्वान् ब्राह्मणजन धनादि सब प्रकारके पदार्थों द्वारा सेवा करनेके लिये योग्य पात्र समझे जाते हैं।

परि-क्लिष्टम् = क्लेश पूर्वक*	उद्दिश्य = उद्देश्य रखकर‡
च = तथा	पुनः = फिर
प्रत्युपकारार्थम् = प्रतिउपकारके प्रयोजनसे†	दीयते = दिया जाता है
वा = अथवा	तत् = वह
फलम् = फलको	दानम् = दान
	राजसम् = राजस
	स्मृतम् = कहा गया है ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते, असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

च = और	अवज्ञातम् = तिरस्कारपूर्वक
यत् = जो	अदेशकाले = अयोग्य देशकालमें
दानम् = दान	अपात्रेभ्यः = कुपात्रोंके लिये§
असत्कृतम् = बिना सत्कार किये	दीयते = दिया जाता है
(वा) = अथवा	

* जैसे प्रायः वर्तमान समयके चन्दे चिट्ठे आदिमें धन दिया जाता है।

† अर्थात् बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे ।

‡ अर्थात् मान, बडाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये ।

§ अर्थात् मद्य मांसादि अभक्ष्य वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी जारी आदि नीचकर्म करनेवालोंके लिये ।

तत्	=वह (दान)	उदाहृतम्	=कहा गया है॥
तामसम्	=तामस		

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा २३

ओंतत्सत्, इति, निर्देशः, ब्रह्मणः, त्रिविधः, स्मृतः, ब्राह्मणाः, तेन, वेदाः, च, यज्ञाः, च, विहिताः, पुरा॥

और हे अर्जुन–

ओम्-	=ओम्	तेन	=उसीसे
तत्-	=तत्	पुरा	=सृष्टिके आदिकालमें
सत्	=सत्		
इति	=ऐसे (यह)	ब्राह्मणाः	=ब्राह्मण
त्रिविधः	=तीन प्रकारका	च	=और
ब्रह्मणः	=सच्चिदानंद-घन ब्रह्मका	वेदाः	=वेद
		च	=तथा
निर्देशः	=नाम	यज्ञाः	=यज्ञादिक
स्मृतः	=कहा है	विहिताः	=रचे गये हैं॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताःसततं ब्रह्मवादिनाम्२४

तस्मात्, ओम्, इति, उदाहृत्य, यज्ञदानतपःक्रियाः, प्रवर्तन्ते, विधानोक्ताः, सततम्, ब्रह्मवादिनाम्॥

तस्मात्	= इसलिये	सततम्	= सदा
ब्रह्मवादिनाम्	= वेदको कथन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी	ओम्	= ओम्
विधानोक्ताः	= शास्त्र विधिसे नियत की हुई	इति	= ऐसे (इस परमात्माके नामको)
यज्ञदानतपःक्रियाः	= यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएं	उदाहृत्य	= उच्चारण करके (ही)
		प्रवर्तन्ते	= आरम्भ होती हैं॥

तादित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाःक्रियंते मोक्षकांक्षिभिः

तत्, इति, अनभिसंधाय, फलम्, यज्ञतपःक्रियाः, दानक्रियाः, च, विविधाः, क्रियंते, मोक्षकांक्षिभिः ॥२५

और–

तत्	= तत् अर्थात् तत् नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है	अनभिसंधाय	= न चाह कर
इति	= ऐसे (इस भावसे)	विविधाः	= नाना प्रकारकी
फलम्	= फलको	यज्ञतपःक्रियाः	= यज्ञ तपरूप क्रियाएं
		च	= तथा
		दानक्रियाः	= दानरूप क्रियाएं

मोक्षकांक्षिभिः	= कल्याणकी इच्छावाले पुरुषों द्वारा	क्रियन्ते = की जाती हैं ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥

सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते ॥२६॥

और—

सत्	= सत्	तथा	= तथा
इति	= ऐसे	पार्थ	= हे पार्थ
एतत्	= यह (परमात्माका नाम)	प्रशस्ते	= उत्तम
सद्भावे	= सत्य भावमें	कर्मणि	= कर्ममें (भी)
च	= और	सत्	= सत्
साधुभावे	= श्रेष्ठ भावमें	शब्दः	= शब्द
प्रयुज्यते	= प्रयोग किया जाता है	युज्यते	= प्रयोग किया जाता है ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते, कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते ॥

च	=तथा	उच्यते	=कही जाती है
यज्ञे	=यज्ञ	च	=और
तपसि	=तप	तदर्थीयम्	=उस परमात्माके अर्थ किया हुआ
च	=और	कर्म	=कर्म
दाने	=दानमें	एव	=निश्चय पूर्वक
(या)	=जो	सत्	=सत् है
स्थितिः	=स्थिति है	इति	=ऐसे
(सा)	=वह	अभिधीयते	=कहा जाता है ॥
एव	=भी		
सत्	=सत् है		
इति	=ऐसे		

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह २८

अश्रद्धया, हुतम्, दत्तम्, तपः, तप्तम्, कृतम्, च, यत्, असत्, इति, उच्यते, पार्थ, न, च, तत्, प्रेत्य, नो, इह ॥

और—

पार्थ	=हे अर्जुन	तपः	=तप
अश्रद्धया	=बिना श्रद्धाके	च	=और
हुतम्	=होमा हुआ हवन(तथा)	यत्	=जो (कुछ भी)
दत्तम्	=दिया हुआ दान (एवं)	कृतम्	=किया हुआ कर्म है
तप्तम्	=तपा हुआ	(तत्)	=वह(समस्त)
		असत्	=असत्

इति	=ऐसे		(लाभदायक है)
उच्यते	=कहा जाता है (इसलिये)	च	=और
		न	=न
तत्	=वह	प्रेत्य	=मरनेके पीछे (ही लाभदायक है)–
नो	=न (तो)		
इह	=इस लोकमें		

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सच्चिदानन्दघन परमात्माके नामका निरन्तर चिंतन करता हुआ निष्काम भावसे केवल परमेश्वरके लिये शास्त्र विधिसे नियत किये हुए कर्मोंका परम श्रद्धा और उत्साहके सहित आचरण करे ॥

ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "श्रद्धात्रयविभागयोग" नामक सत्रहवां अध्याय ।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मनेनमः

अथाष्टादशोऽध्यायः ॥

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

संन्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्
त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन ॥

उसके उपरान्त अर्जुन बोला—

महाबाहो	=हे महाबाहो	त्यागस्य	=त्यागके
हृषीकेश	=हे अंतर्यामिन्	तत्त्वम्	=तत्त्वको
केशिनि-षूदन	=हे वासुदेव (मैं)	पृथक्	=पृथक् पृथक्
		वेदितुम्	=जानना
संन्यासस्य	=संन्यास	इच्छामि	=चाहता हूं ॥
च	=और		

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः २

काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, संन्यासम्, कवयः,
विदुः, सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः ॥

इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे अर्जुन कितने ही—

कवयः	=पंडितजन(तो)		(कितनेही)
काम्यानाम्	=काम्य *	विचक्षणाः	=विचारकुशल पुरुष
कर्मणाम्	=कर्मोंके	सर्वकर्मफलत्यागम्	=सब कर्मोंके फलके त्यागको†
न्यासम्	=त्यागको		
संन्यासम्	=संन्यास		
विदुः	=जानते हैं	त्यागम्	=त्याग
(च)	=और	प्राहुः	=कहते हैं ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥३॥

त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः, यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे ॥

तथा—

एके	=कई एक	मनीषिणः	=विद्वान्

* स्त्री पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये तथा रोग संकटादिकी निवृत्तिके लिये जो यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म किये जाते हैं उनका नाम काम्यकर्म है ।

† ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, मातापितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीर संबंधी खानपान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें इसलोक और परलोककी संपूर्ण कामनाओंके त्यागका नाम सब कर्मोंके फलका त्याग है ।

इति	=ऐसे	अपरे	=दूसरे विद्वान्
प्राहुः	=कहते हैं (कि)	इति	=ऐसे
कर्म	=कर्म (सभी)	(आहुः)	=कहते हैं(कि)
दोषवत्	=दोष युक्त हैं (इसलिये)	यज्ञदान-तपःकर्म	=यज्ञ दान और तपरूप कर्म
त्याज्यम्	=त्यागनेके योग्य हैं	न त्याज्यम्	=त्यागने योग्य नहीं हैं ॥
च	=और		

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥

निश्चयम्, शृणु, मे, तत्र, त्यागे, भरतसत्तम, त्यागः, हि, पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः, संप्रकीर्तितः ॥४॥

परन्तु—

भरतसत्तम	=हे अर्जुन	त्यागः	=त्याग(सात्त्विक राजस और तामस ऐसे)
तत्र	=उस		
त्यागे	=त्यागके विषयमें (तूं)	त्रिविधः	=तीनों प्रकारका
मे	=मेरे	हि	=ही
निश्चयम्	=निश्चयको	संप्रकीर्तितः	=कहा गया है ॥
शृणु	=सुन		
पुरुष-व्याघ्र	=हे पुरुष-श्रेष्ठ (वह)		

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥५॥

यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्,
यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्॥

तथा—

यज्ञदान-तपःकर्म	= यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	यज्ञः	= यज्ञ
		दानम्	= दान
		च	= और
न त्याज्यम्	= त्यागनेके योग्य नहीं है	तपः	= तप (यह तीनों)
	(किन्तु)	एव	= ही
तत्	= वह	मनीषिणाम्	= बुद्धिमान्* पुरुषोंको
एव	= निःसन्देह		
कार्यम्	= करना कर्तव्य है (क्योंकि)	पावनानि	= पवित्र करने-वाले हैं॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥६॥

एतानि, अपि, तु, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, फलानि, च,
कर्तव्यानि, इति, मे, पार्थ, निश्चितम्, मतम्, उत्तमम्॥६॥

* वह मनुष्य बुद्धिमान् है जो कि फल और आसक्तिको त्यागकर केवल भगवत् अर्थ कर्म करता है।

इसलिये—

पार्थ = हे पार्थ	फलानि = फलोंको
एतानि = यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म	त्यक्त्वा = त्यागकर (अवश्य)
	कर्तव्यानि = करने चाहिये
तु = तथा	इति = ऐसा
(अन्यानि) = और	मे = मेरा
अपि = भी	निश्चितम् = निश्चय किया हुआ
कर्माणि = संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म	उत्तमम् = उत्तम
संगम् = आसक्तिको	मतम् = मत है ॥
च = और	

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ७

नियतस्य, तु, संन्यासः, कर्मणः, न, उपपद्यते, मोहात्, तस्य, परित्यागः, तामसः, परिकीर्तितः ॥

तु = और (हे अर्जुन)	न उपपद्यते = योग्य नहीं है
नियतस्य = नियत*	(इसलिये)
कर्मणः = कर्मका	
संन्यासः = त्याग करना	मोहात् = मोहसे

* इसी अध्यायके श्लोक ४८ की टिप्पणीमें इसका अर्थ देखना चाहिये।

तस्य	=उसका	परिकीर्तितः	=कहा गया है ॥
परित्यागः	=त्याग करना		
तामसः	=तामस त्याग		

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥

दुःखम्, इति, एव, यत्, कर्म, कायक्लेशभयात्, त्यजेत्, सः, कृत्वा, राजसम्, त्यागम्, न, एव, त्यागफलम्, लभेत् ॥८॥

और यदि कोई मनुष्य—

यत्	=जो (कुछ)		(तो)
कर्म	=कर्म है	सः	=वह पुरुष(उस)
(तत्)	=वह (सब)	राजसम्	=राजस
एव	=ही	त्यागम्	=त्यागको
दुःखम्	=दुःखरूप है	कृत्वा	=करके
इति	=ऐसे(समझकर)	एव	=भी
कायक्लेशभयात्	=शारीरिक क्लेशके भयसे (कर्मोंका)	त्यागफलम्	=त्यागके फलको
त्यजेत्	=त्यागकर दे	न लभेत्	=प्राप्त नहीं होता है—

अर्थात् उसका वह त्याग करना व्यर्थ ही होता है ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥

कार्यम्, इति, एव, यत्, कर्म, नियतम्, क्रियते, अर्जुन, संगम्, त्यक्त्वा, फलम्, च, एव, सः, त्यागः, सात्त्विकः, मतः ॥९॥

और-

अर्जुन	=हे अर्जुन	संगम्	=आसक्तिको
कार्यम्	=करना कर्तव्य है	च	=और
इति	=ऐसे (समझकर)	फलम्	=फलको
एव	=ही	त्यक्त्वा	=त्यागकर
यत्	=जो	क्रियते	=किया जाता है
नियतम्	=शास्त्र विधि-से नियत किया हुआ कर्तव्य	सः	=वह
		एव	=ही
		सात्त्विकः	=सात्त्विक
		त्यागः	=त्याग
कर्म	=कर्म	मतः	=माना गया है-

अर्थात् कर्तव्य कर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें जो आसक्ति और फलका त्यागना है वही सात्त्विक त्याग माना गया है ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते, त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः ॥१०॥

और हे अर्जुन जो पुरुष—

अकुशलम्	= अकल्याण कारक		(वह)
कर्म	= कर्मसे (तो)	सत्त्वसमाविष्टः	= शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त हुआ पुरुष
न द्वेष्टि	= द्वेष नहीं करता है (और)	छिन्नसंशयः	= संशयरहित
कुशले	= कल्याण कारक कर्ममें	मेधावी	= ज्ञानवान् (और)
न अनुषज्जते	= आसक्त नहीं होता है	त्यागी	= त्यागी है ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

न, हि, देहभृता, शक्यम्, त्यक्तुम्, कर्माणि, अशेषतः, यः, तु, कर्मफलत्यागी, सः, त्यागी, इति, अभिधीयते ॥ ११

हि	= क्योंकि	यः	= जो पुरुष
देहभृता	= देहधारी पुरुषके द्वारा	कर्मफलत्यागी	= कर्मोंके फलका त्यागी है
अशेषतः	= संपूर्णतासे	सः	= वह
कर्माणि	= सब कर्म	तु	= ही
त्यक्तुम्	= त्यागे जानेको	त्यागी	= त्यागी है
न शक्यम्	= शक्य नहीं है	इति	= ऐसे
(तस्मात्)	= इससे	अभिधीयते	= कहा जाता है ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्

अनिष्टम्, इष्टम्, मिश्रम्, च, त्रिविधम्, कर्मणः, फलम्, भवति, अत्यागिनाम्, प्रेत्य, न, तु, संन्यासिनाम्, क्वचित् ॥१२॥

तथा-

अत्यागिनाम्	= सकामी पुरुषोंके	प्रेत्य	= मरनेके पश्चात् (भी)
कर्मणः	= कर्मका (ही)	भवति	= होता है
इष्टम्	= अच्छा	तु	= और
अनिष्टम्	= बुरा	संन्यासिनाम्	= त्यागी* पुरुषोंके (कर्मोंका फल)
च	= और		
मिश्रम्	= मिला हुआ		
(इति)	= ऐसे	क्वचित्	= किसी कालमें भी
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका		
फलम्	= फल	न	= नहीं होता-

क्योंकि उनके द्वारा होनेवाले कर्म वास्तवमें कर्म नहीं हैं ॥

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्

---

* संपूर्ण कर्तव्य कर्मोंमें फल, आसक्ति और कर्त्तापनके अभिमानको जिसने त्याग दिया है उसीका नाम त्यागी है।

पंच, एतानि, महाबाहो, कारणानि, निबोध, मे, सांख्ये, कृतांते, प्रोक्तानि, सिद्धये, सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

और–

महाबाहो	=हे महाबाहो	सांख्ये	=सांख्य
सर्वकर्मणाम्	=संपूर्ण कर्मोंकी	कृतान्ते	=सिद्धान्तमें
सिद्धये	=सिद्धिके लिये*	प्रोक्तानि	=कहे गये हैं
एतानि	=यह	(तानि)	=उनको (तूं)
पंच	=पांच	मे	=मेरेसे
कारणानि	=हेतु	निबोध	=भली प्रकार जान ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् १४

अधिष्ठानम्, तथा, कर्ता, करणम्, च, पृथग्विधम्, विविधाः, च, पृथक्, चेष्टाः, दैवम्, च, एव, अत्र, पंचमम् ॥

हे अर्जुन–

अत्र	=इस विषयमें	च	=तथा
अधिष्ठानं	=आधार†	पृथग्विधम्	=न्यारे न्यारे
च	=और	करणम्	=करण‡
कर्ता	=कर्ता	च	=और

* अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके सिद्ध होनेमें।

† जिसके आश्रय कर्म किये जावें उसका नाम आधार है।

‡ जिन जिन इन्द्रियादिकोंके और साधनोंके द्वारा कर्म किये जाते हैं उनका नाम करण है।

विविधाः	=नाना प्रकारकी	एव	=ही
पृथक्	=न्यारी न्यारी	पंचमम्	=पांचवा हेतु
चेष्टाः	=चेष्टा (एवं)	दैवम्	=दैव* (कहा गया है) ॥
तथा	=वैसे		

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः॥१५

शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः, न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पंच, एते, तस्य, हेतवः ॥

क्योंकि—

नरः	=मनुष्य	यत्	=जो (कुछ)
शरीरवाङ्मनोभिः	=मन, वाणी और शरीरसे	कर्म	=कर्म
		प्रारभते	=आरंभ करता है
न्याय्यम्	=शास्त्रके अनुसार	तस्य	=उसके
		एते	=यह
वा	=अथवा	पंच	=पांचों (ही)
विपरीतम्	=विपरीत	हेतवः	=कारण हैं ॥
वा	=भी		

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः १६

तत्र, एवं, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः, पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः ॥

* पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारोंका नाम दैव है ।

तु =परन्तु
एवम् =ऐसा
सति =होनेपर भी
यः =जो पुरुष
अकृतबुद्धित्वात् ={अशुद्धबुद्धि* होनेके कारण
तत्र =उस विषयमें
केवलम् ={केवल शुद्ध स्वरूप
आत्मानम् } =आत्माको
कर्तारम् =कर्ता
पश्यति =देखता है
सः =वह
दुर्मतिः ={मलीन बुद्धिवाला अज्ञानी
न पश्यति ={यथार्थ नहीं देखता है ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते १७

यस्य, न, अहंकृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते, हत्वा, अपि, सः, इमान्, लोकान्, न, हंति, न, निबध्यते ॥

और हे अर्जुन–

यस्य =जिस पुरुषके (अंतःकरणमें)
अहंकृतः ={मैं कर्त्ता हूं ऐसा
भावः =भाव
न =नहीं है (तथा)
यस्य =जिसकी
बुद्धिः =बुद्धि (सांसारिक पदार्थोंमें और संपूर्ण कर्मोंमें)
न लिप्यते ={लिपायमान नहीं होती

* सत्संग और शास्त्रके अभ्याससे तथा भगवत् अर्थ कर्म और उपासनाके करनेसे मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध होती है इसलिये जो उपरोक्त साधनोंसे रहित है उसकी बुद्धि अशुद्ध है ऐसा समझना चाहिये ।

सः	=वह पुरुष	न	=न (तो)
इमान्	=इन	हन्ति	=मारताहै(और)
लोकान्	=सब लोकोंको	न	=न
हत्वा	=मारकर	निबध्यते	=पापसे बंधता है* ॥
अपि	=भी (वास्तवमें)		

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥१८

ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना, करणम्, कर्म, कर्त्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसंग्रहः॥

तथा हे भारत—

परिज्ञाता	=ज्ञाता†	ज्ञेयम्	=ज्ञेय§
ज्ञानम्	=ज्ञान‡ (और)	त्रिविधा	=यह तीनों(तो)

* जैसे अग्नि, वायु और जलके द्वारा प्रारब्धवश किसी प्राणीकी हिंसा होती देखनेमें आवे तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है ; वैसे ही जिस पुरुषका देहमें अभिमान नहीं है और स्वार्थ रहित केवल संसारके हितके लिये ही जिसकी संपूर्ण क्रियायें होती हैं उस पुरुषके शरीर और इन्द्रियों द्वारा यदि किसी प्राणीकी हिंसा होती हुई लोक दृष्टिमें देखी जाय तो भी वह वास्तवमें हिंसा नहीं है क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारके न होनेसे किसी प्राणीकी हिंसा हो ही नहीं सक्ती तथा बिना कर्तृत्व अभिमानके किया हुआ कर्म वास्तवमें अकर्म ही है इसलिये वह पुरुष पापसे नहीं बंधता है।

† जाननेवालेका नाम ज्ञाता है।

‡ जिसके द्वारा जाना जाय उसका नाम ज्ञान है।

§ जाननेमें आनेवाली वस्तुका नाम ज्ञेय है।

कर्मचोदना	=	कर्मके प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे तो कर्ममें प्रवृत्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है (और)	करणम्	= करण† (और)
			कर्म	= क्रिया‡
			इति	= यह
			त्रिविधः	= तीनों
			कर्मसंग्रहः	= कर्मके संग्रह हैं अर्थात् इन तीनोंके संयोगसे कर्म बनता है ॥
कर्ता	=	कर्ता*		

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥

ज्ञानम्, कर्म, च, कर्त्ता, च, त्रिधा, एव, गुणभेदतः, प्रोच्यते, गुणसंख्याने, यथावत्, शृणु, तानि, अपि ॥१६॥

उन सबमें—

ज्ञानम् = ज्ञान		गुणभेदतः = गुणोंके भेदसे
च = और		गुणसंख्याने = सांख्य शास्त्रमें
कर्म = कर्म		
च = तथा		त्रिधा = तीन तीन प्रकारसे
कर्त्ता = कर्त्ता		
एव = भी		प्रोच्यते = कहे गये हैं

* कर्म करनेवालेका नाम कर्त्ता है।

† जिन साधनोंसे कर्म किया जाय उनका नाम करण है।

‡ करनेका नाम क्रिया है।

तानि	=उनको	यथावत्	=भली प्रकार
अपि	=भी (तूं मेरेसे)	शृणु	=सुन ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्

सर्वभूतेषु, येन, एकम्, भावम्, अव्ययम्, ईक्षते, अविभक्तम्, विभक्तेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, सात्त्विकम् ॥२०॥

हे अर्जुन--

येन	=जिस ज्ञानसे (मनुष्य)	अविभक्तम्	=विभाग रहित (समभावसे स्थित)
विभक्तेषु	=पृथक् पृथक्		
सर्वभूतेषु	=सब भूतोंमें	ईक्षते	=देखता है
एकम्	=एक	तत्	=उस
अव्ययम्	=अविनाशी	ज्ञानम्	=ज्ञानको (तो तूं)
भावम्	=परमात्म-भावको	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
		विद्धि	=जान ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं
नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु
तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

पृथक्त्वेन, तु, यत्, ज्ञानम्, नानाभावान्, पृथग्विधान्, वेत्ति, सर्वेषु, भूतेषु, तत्, ज्ञानम्, विद्धि, राजसम् ॥

तु	= और	नानाभावान्	= अनेक भावोंको
यत्	= जो	पृथक्त्वेन	= न्यारा न्यारा करके
ज्ञानम्	= ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य	वेत्ति	= जानता है
सर्वेषु	= संपूर्ण	तत्	= उस
भूतेषु	= भूतोंमें	ज्ञानम्	= ज्ञानको (तूं)
पृथग्विधान्	= भिन्न भिन्न प्रकारके	राजसम्	= राजस
		विद्धि	= जान ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२

यत्, तु, कृत्स्नवत्, एकस्मिन्, कार्ये, सक्तम्, अहैतुकम्, अतत्त्वार्थवत्, अल्पम्, च, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

तु	= और	च	= तथा (जो)
यत्	= जो ज्ञान	अहैतुकम्	= बिनायुक्तिवाला
एकस्मिन्	= एक	अतत्त्वार्थवत्	= तत्त्व अर्थसे रहित (और)
कार्ये	= कार्यरूप शरीरमें ही	अल्पम्	= तुच्छ है
कृत्स्नवत्	= संपूर्णताके सदृश	तत्	= वह (ज्ञान)
		तामसम्	= तामस
सक्तम्	= आसक्त है*	उदाहृतम्	= कहा गया है ॥

* अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य एक क्षणभंगुर नाशवान् शरीरको ही आत्मा मानकर उसमें सर्वस्वकी भांति आसक्त रहता है ।

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥

नियतम्, संगरहितम्, अरागद्वेषतः, कृतम्, अफलप्रेप्सुना, कर्म, यत्, तत्, सात्त्विकम्, उच्यते ॥२३॥

तथा हे अर्जुन–

यत्	=जो	अफलप्रेप्सुना	=फलको न चाहनेवाले पुरुष द्वारा
कर्म	=कर्म	अरागद्वेषतः	=बिना राग-द्वेषसे
नियतम्	=शास्त्र विधिसे नियत किया हुआ (और)	कृतम्	=किया हुआ है
संगरहितम्	=कर्त्तापनके अभिमानसे रहित	तत्	=वह (कर्म तो)
		सात्त्विकम्	=सात्त्विक
		उच्यते	=कहा जाता है ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४

यत्, तु, कामेप्सुना, कर्म, साहंकारेण, वा, पुनः, क्रियते, बहुलायासम्, तत्, राजसम्, उदाहृतम् ॥

तु	=और	बहुलायासम्	=बहुत परिश्रमसेयुक्तहै
यत्	=जो	पुनः	=तथा
कर्म	=कर्म		

कामेप्सुना	=	फलको चाहनेवाले
वा	=	और
साहंकारेण	=	अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा
क्रियते	=	किया जाता है
तत्	=	वह (कर्म)
राजसम्	=	राजस
उदाहृतम्	=	कहा गया है ॥

अनुबंधं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५

अनुबंधम्, क्षयम्, हिंसाम्, अनवेक्ष्य, च, पौरुषम्, मोहात्, आरभ्यते, कर्म, यत्, तत्, तामसम्, उच्यते ॥

तथा-

यत्	=	जो
कर्म	=	कर्म
अनुबंधम्	=	परिणाम
क्षयम्	=	हानि
हिंसाम्	=	हिंसा
च	=	और
पौरुषम्	=	सामर्थ्यको
अनवेक्ष्य	=	न विचारकर
मोहात्	=	केवल अज्ञानसे
आरभ्यते	=	आरंभ किया जाता है
तत्	=	वह कर्म
तामसम्	=	तामस
उच्यते	=	कहा जाता है

मुक्तसंगोऽनहंवादी
धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः
कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

मुक्तसंगः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः, सिद्ध्यसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्ता, सात्त्विकः, उच्यते ॥

तथा हे अर्जुन जो कर्ता—

मुक्तसंगः	= आसक्तिसे रहित (और)	सिद्ध्यसिद्ध्योः	= कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें
अनहंवादी	= अहंकारके वचन न बोलनेवाला	निर्विकारः	= हर्ष शोकादि विकारोंसे रहित है (वह)
धृत्युत्साहसमन्वितः	= धैर्य और उत्साहसे युक्त (एवं)	कर्ता	= कर्ता (तो)
		सात्त्विकः	= सात्त्विक
		उच्यते	= कहा गया है॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥

रागी, कर्मफलप्रेप्सुः, लुब्धः, हिंसात्मकः, अशुचिः, हर्षशोकान्वितः, कर्ता, राजसः, परिकीर्तितः ॥२७॥

और जो—

रागी	= आसक्तिसे युक्त	हिंसात्मकः	= दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला
कर्मफलप्रेप्सुः	= कर्मोंके फलको चाहनेवाला (और)	अशुचिः	= अशुद्धाचारी (और)
लुब्धः	= लोभी है (तथा)	हर्षशोकान्वितः	= हर्ष शोकसे लिपायमान है (वह)

कर्ता	=कर्ता	परिकीर्तितः	=कहा गया है ॥
राजसः	=राजस		

अयुक्तः प्राकृतःस्तब्धःशठो नैष्कृतिकोऽलसः
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते २८

अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः, नैष्कृतिकः, अलसः, विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते ॥

तथा जो—

अयुक्तः	=विक्षेप युक्त चित्तवाला	विषादी	=शोक करनेके स्वभाववाला
प्राकृतः	=शिक्षासे रहित	अलसः	=आलसी
स्तब्धः	=घमंडी	च	=और
शठः	=धूर्त (और)	दीर्घसूत्री	=दीर्घसूत्री*है (वह)
नैष्कृतिकः	=दूसरेकी आजीविकाका नाशक (एवं)	कर्ता	=कर्ता
		तामसः	=तामस
		उच्यते	=कहा गया है॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय॥२९

* दीर्घसूत्री उसको कहा जाता है कि जो थोड़े कालमें होने लायक साधारण कार्यको भी फिर कर लेंगे ऐसी आशासे बहुत कालतक नहीं पूरा करता ।

बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु, प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनंजय ॥

तथा—

धनंजय	=हे अर्जुन (तूं)	भेदम्	=भेद
बुद्धेः	=बुद्धिका	अशेषेण	=संपूर्णतासे
च	=और	पृथक्त्वेन	=विभागपूर्वक
धृतेः	=धारणशक्तिका	(मया)	=मेरेसे
एव	=भी	प्रोच्यमानम्	=कहा हुआ
गुणतः	=गुणोंके कारण		
त्रिविधम्	=तीन प्रकारका	शृणु	=सुन ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बंधं मोक्षं च या वेत्तिबुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी

प्रवृत्तिम्, च, निवृत्तिम्, च, कार्याकार्ये, भयाभये, बंधम्, मोक्षम्, च, या, वेत्ति, बुद्धिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥३०॥

पार्थ	=हे पार्थ	निवृत्तिम्	=निवृत्तिमार्ग† को
प्रवृत्तिम्	=प्रवृत्तिमार्ग*		
च	=और	च	=तथा

* गृहस्थमें रहते हुए फल और आसक्तिको त्यागकर भगवत् अर्पण बुद्धिसे केवल लोक शिक्षाके लिये राजा जनककी भांति वर्तनेका नाम प्रवृत्तिमार्ग है ।

† देहाभिमानको त्यागकर केवल सच्चिदानंदघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित हुए श्रीशुकदेवजी और सनकादिकोंकी भांति संसारसे उपराम होकर विचरनेका नाम निवृत्तिमार्ग है ।

कार्याकार्ये	= कर्तव्य और अकर्तव्यको (एवं)	मोक्षम्	= मोक्षको,
भयाभये	= भय और अभयको (तथा)	या	= जो बुद्धि
बंधम्	= बंधन	वेत्ति	= तत्त्वसे जानती है
च	= और	सा	= वह
		बुद्धिः	= बुद्धि (तो)
		सात्त्विकी	= सात्त्विकी है

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥

यया, धर्मम्, अधर्मम्, च, कार्यम्, च, अकार्यम्, एव, च, अयथावत्, प्रजानाति, बुद्धिः, सा, पार्थ, राजसी ॥३१॥

और–

पार्थ	= हे पार्थ	च	= और
यया	= जिस बुद्धिके द्वारा (मनुष्य)	अकार्यम्	= अकर्त्तव्यको
धर्मम्	= धर्म	एव	= भी
च	= और	अयथावत्	= यथार्थ नहीं
अधर्मम्	= अधर्मको	प्रजानाति	= जानता है
च	= तथा	सा	= वह
कार्यम्	= कर्तव्य	बुद्धिः	= बुद्धि
		राजसी	= राजसी है

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

अधर्मम्, धर्मम्, इति, या, मन्यते, तमसा, आवृता, सर्वार्थान्, विपरीतान्, च, बुद्धिः, सा, पार्थ, तामसी ॥३२

और-

पार्थ	=हे अर्जुन	मन्यते	=मानती है
या	=जो	च	=तथा (और भी)
तमसा	=तमोगुणसे	सर्वार्थान्	=संपूर्ण अर्थोंको
आवृता	=आवृत हुई बुद्धि	विपरीतान्	=विपरीत ही
		(मन्यते)	=मानती है
अधर्मम्	=अधर्मको	सा	=वह
धर्मम्	=धर्म	बुद्धिः	=बुद्धि
इति	=ऐसा	तामसी	=तामसी है ॥

धृत्या यया धारयते
मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या
धृतिःसा पार्थसात्त्विकी ॥३३॥

धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः, योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी ॥

और-

पार्थ	=हे पार्थ	यया	=जिस
योगेन	=ध्यान योगके द्वारा	अव्यभिचारिण्या	=अव्यभिचारिणी*

* भगवत् विषयके सिवाय अन्य सांसारिक विषयोंको धारण करना ही व्यभिचार दोष है उस दोषसे जो रहित है वह अव्यभिचारिणी धारणा है

धृत्या	= धारणासे (मनुष्य)	धारयते	= धारण करता है
मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः	= मन प्राण और इंद्रियोंकी क्रियाओंको*	सा	= वह
		धृतिः	= धारणा (तो)
		सात्त्विकी	= सात्त्विकी है ॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥

यया, तु, धर्मकामार्थान्, धृत्या, धारयते, अर्जुन, प्रसंगेन, फलाकांक्षी, धृतिः, सा, पार्थ, राजसी ॥३४॥

तु	= और	धृत्या	= धारणाके द्वारा
पार्थ	= हे पृथापुत्र	धर्मकामार्थान्	= धर्म अर्थ और कामोंको
अर्जुन	= अर्जुन	धारयते	= धारण करता है
फलाकांक्षी	= फलकी इच्छावाला मनुष्य	सा	= वह
प्रसंगेन	= अति आसक्तिसे	धृतिः	= धारणा
		राजसी	= राजसी है ॥
यया	= जिस		

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥

---

* मन प्राण और इन्द्रियोंको भगवत् प्राप्तिके लिये भजन ध्यान और निष्काम कर्मोंमें लगानेका नाम उनकी क्रियाओंको धारण करना है।

यया, स्वप्नम्, भयम्, शोकम्, विषादम्, मदम्, एव, च, न, विमुंचति, दुर्मेधाः, धृतिः, सा, पार्थ, तामसी ॥३५॥

तथा–

पार्थ	=हे पार्थ	मदम्	=उन्मत्तताको
दुर्मेधाः	={दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य	एव	=भी
यया	=जिस	न विमुंचति	={नहीं छोड़ता हैं अर्थात् धारण किये रहता है
(धृत्या)	=धारणाके द्वारा		
स्वप्नम्	=निद्रा		
भयम्	=भय	सा	=वह
शोकम्	=चिन्ता	धृतिः	=धारणा
च	=और	तामसी	=तामसी है॥
विषादम्	=दुःखको(एवं)		

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥

सुखम्, तु, इदानीम्, त्रिविधम्, शृणु, मे, भरतर्षभ, अभ्यासात्, रमते, यत्र, दुःखांतम्, च, निगच्छति ॥३६॥

हे अर्जुन–

इदानीम्	=अब	मे	=मेरेसे
सुखम्	=सुख	शृणु	=सुन
तु	=भी (तूं)	भरतर्षभ	=हे भरतश्रेष्ठ
त्रिविधम्	=तीन प्रकारका	यत्र	=जिस सुखमें

(साधक पुरुष)
अभ्यासात् = भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे
रमते = रमण करता है
च = और
दुःखान्तम् = दुःखोंके अन्तको
निगच्छति = प्राप्त होता है

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

यत्, तत्, अग्रे, विषम्, इव, परिणामे, अमृतोपमम्, तत्, सुखम्, सात्त्विकम्, प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम् ३७

तत् = वह (सुख)
अग्रे = प्रथम साधनके आरम्भकालमें
(यद्यपि)
विषम् = विषके
इव = सदृश भासता है *(परन्तु)
परिणामे = परिणाममें
अमृतोपमम् = अमृतके तुल्य है
(अतः) = इसलिये
यत् = जो
आत्मबुद्धिप्रसादजम् = भगवत् विषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न हुआ

---

* जैसे खेलमें आसक्तिवाले बालकको विद्याका अभ्यास मूढ़ताके कारण प्रथम विषके तुल्य भासता है वैसे ही विषयोंमें आसक्तिवाले पुरुषको भगवत् भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनोंका अभ्यास मर्म न जाननेके कारण प्रथम विषके सदृश भासता है ।

सुखम्	=सुख है	सात्त्विकम्	=सात्त्विक
तत्	=वह	प्रोक्तम्	=कहा गया है

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ३८

विषयेंद्रियसंयोगात्, यत्, तत्, अग्रे, अमृतोपमम्, परिणामे, विषम्, इव, तत्, सुखम्, राजसम्, स्मृतम् ॥

और-

यत्	=जो		(भासता है परन्तु)
सुखम्	=सुख	परिणामे	=परिणाममें
विषये-न्द्रियसं-योगात्	=विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे	विषम्	=विषके*
(भवति)	=होता है	इव	=सदृश है
तत्	=वह (यद्यपि)	(अतः)	=इसलिये
अग्रे	=भोगकालमें	तत्	=वह (सुख)
अमृतो-पमम्	=अमृतके सदृश	राजसम्	=राजस
		स्मृतम्	=कहा गया है॥

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ३९

यत्, अग्रे, च, अनुबंधे, च, सुखम्, मोहनम्, आत्मनः, निद्रालस्यप्रमादोत्थम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम् ॥

---

* बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और परलोकका नाशक होनेसे विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले सुखको परिणाममें विषके सदृश कहा है

तथा—

यत्	=जो	तत्	=वह
सुखम्	=सुख	निद्रालस्यप्रमादोत्थम्	=निद्रा आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न हुआ (सुख)
अग्रे	=भोगकालमें		
च	=और		
अनुबंधे	=परिणाममें		
च	=भी		
आत्मनः	=आत्माको	तामसम्	=तामस
मोहनम्	=मोहनेवाला है	उदाहृतम्	=कहा गया है॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः

न, तत्, अस्ति, पृथिव्याम्, वा, दिवि, देवेषु, वा, पुनः, सत्त्वम्, प्रकृतिजैः, मुक्तम्, यत्, एभिः, स्यात्, त्रिभिः, गुणैः ॥४०

पुनः	=और (हे अर्जुन)	सत्त्वम्	=प्राणी
		न	=नहीं
पृथिव्याम्	=पृथिवीमें	अस्ति	=है (कि)
वा	=या	यत्	=जो
दिवि	=स्वर्गमें	एभिः	=इन
वा	=अथवा	प्रकृतिजैः	=प्रकृतिसे उत्पन्न हुए
देवेषु	=देवताओंमें (ऐसा)	त्रिभिः	=तीनों
तत्	=वह(कोई भी)	गुणैः	=गुणोंसे

मुक्तम्	=रहित	स्यात्	=हो

क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत त्रिगुणमयी मायाका ही विकार है ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्, शूद्राणाम्, च, परंतप, कर्माणि, प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैः, गुणैः ॥

इसलिये—

परंतप	=हे परन्तप	कर्माणि	=कर्म
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशाम्	=ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके	स्वभाव-प्रभवैः	=स्वभावसे उत्पन्न हुए
च	=तथा	गुणैः	=गुणों करके
शूद्राणाम्	=शूद्रोंके (भी)	प्रविभ-क्तानि	=विभक्त किये गये हैं

अर्थात् पूर्वकृत कर्मोंके संस्काररूप स्वभावसे उत्पन्न हुए गुणोंके अनुसार विभक्त किये गये हैं ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्

शमः, दमः, तपः, शौचम्, क्षांतिः, आर्जवम्, एव, च, ज्ञानम्, विज्ञानम्, आस्तिक्यम्, ब्रह्मकर्म, स्वभावजम् ॥४२

उनमें—

शमः = अन्तःकरण-का निग्रह

दमः = इन्द्रियोंका दमन

शौचम् = बाहर भीतर-की शुद्धि*

तपः = धर्मके लिये कष्ट सहन करना (और)

क्षांतिः = क्षमाभाव (एवं)

आर्जवम् = मन इंद्रियां और शरीर-की सरलता

आस्तिक्यम् = आस्तिक बुद्धि

ज्ञानम् = शास्त्रविषय-क ज्ञान

च = और

विज्ञानम् = परमात्म त-त्त्वका अनुभव

एव = भी (ये तो)

ब्रह्मकर्म स्वभाव-जम् = ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

शौर्यम्, तेजः, धृतिः, दाक्ष्यम्, युद्धे, च, अपि, अपला-यनम्, दानम्, ईश्वरभावः, च, क्षात्रम्, कर्म, स्वभावजम् ॥४३

और—

शौर्यम् = शूरबीरता

तेजः = तेज

धृतिः = धैर्य

दाक्ष्यम् = चतुरता

* गीता अ० १३ श्लो० ७ की टिप्पणीमें देखना चाहिये ।

च	=और	च	=और
युद्धे	=युद्धमें	ईश्वरभावः	=स्वामीभाव* (ये सब)
अपि	=भी	क्षात्रम्	=क्षत्रियके
अपलायनम्	=न भागनेका स्वभाव(एवं)	स्वभावजम्	=स्वाभाविक
दानम्	=दान	कर्म	=कर्म हैं ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्, वैश्यकर्म, स्वभावजम्, परिचर्यात्मकम्, कर्म, शूद्रस्य, अपि, स्वभावजम् ॥४४॥

तथा–

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्	=खेती, गौपालन और क्रय विक्रयरूप सत्यव्यवहार† (ये)	वैश्यकर्म स्वभावजम्	=वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं (और)
		परिचर्यात्मकम्	=सब वर्णोंकी सेवा करना

* अर्थात् निःस्वार्थ भावसे सबका हित सोचकर शास्त्राज्ञानुसार शासन द्वारा प्रेमके सहित पुत्र तुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव।

† वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर देदेना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ कपट चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे

(यह)	स्वभावजम् = स्वाभाविक
शूद्रस्य = शूद्रका	कर्म = कर्म है ॥
अपि = भी	

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु॥

स्वे, स्वे, कर्मणि, अभिरतः, संसिद्धिम्, लभते, नरः,
स्वकर्मनिरतः, सिद्धिम्, यथा, विन्दति, तत्, शृणु ॥४५

एवं इस–

स्वे = अपने	यथा = जिस प्रकारसे
स्वे = अपने (स्वाभाविक)	स्वकर्मनिरतः = अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य
कर्मणि = कर्ममें	
अभिरतः = लगा हुआ	
नरः = मनुष्य	सिद्धिम् = परम सिद्धिको
संसिद्धिम् = भगवत् प्राप्तिरूप परमसिद्धिको	विन्दति = प्राप्त होता है
	तत् = उस विधिको (तूं मेरेसे)
लभते = प्राप्त होता है (परन्तु)	शृणु = सुन

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः

दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादिक दोषोंसे रहित जो सत्यता पूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है उसका नाम सत्य व्यवहार है।

यतः, प्रवृत्तिः, भूतानाम्, येन, सर्वम्, इदम्, ततम्, स्वकर्मणा, तम्, अभ्यर्च्य, सिद्धिम्, विन्दति, मानवः ॥४६

हे अर्जुन–

यतः	= जिस परमात्मासे	तम्	= उस परमेश्वरको
भूतानाम्	= सर्व भूतोंकी	स्वकर्मणा	= अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा
प्रवृत्तिः	= उत्पत्ति हुई है (और)		
येन	= जिससे	अभ्यर्च्य	= पूजकर †
इदम्	= यह	मानवः	= मनुष्य
सर्वम्	= सर्व (जगत)	सिद्धिम्	= परमसिद्धिको
ततम्	= व्याप्त है *	विन्दति	= प्राप्त होता है

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्, स्वभावनियतम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ॥४७॥

---

* जैसे बर्फ जलसे व्याप्त है वैसे ही संपूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मासे व्याप्त है।

† जैसे पतिव्रता स्त्री पतिको ही सर्वस्व समझकर पतिका चिंतन करती हुई पतिकी आज्ञानुसार पतिके ही लिये मन वाणी शरीरसे कर्म करती है वैसे ही परमेश्वरको ही सर्वस्व समझकर परमेश्वरका चिंतन करते हुए परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार मन वाणी और शरीरसे परमेश्वरके ही लिये स्वाभाविक कर्तव्य कर्मका आचरण करना कर्म द्वारा परमेश्वरको पूजना है।

इसलिये—

स्वनुष्ठितात्	= अच्छी प्रकार आचरण किये हुए	स्वभावनियतम्	= स्वभावसे नियत किये हुए
परधर्मात्	= दूसरेके धर्मसे	कर्म	= स्वधर्मरूप कर्मको
विगुणः	= गुण रहित	कुर्वन्	= करता हुआ (मनुष्य)
(अपि)	= भी		
स्वधर्मः	= अपना धर्म	किल्बिषम्	= पापको
श्रेयान्	= श्रेष्ठ है	न	= नहीं
(यस्मात्)	= क्योंकि	आप्नोति	= प्राप्त होता ॥

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ४८

सहजम्, कर्म, कौंतेय, सदोषम्, अपि, न, त्यजेत्, सर्वारंभाः, हि, दोषेण, धूमेन, अग्निः, इव, आवृताः ॥४८॥

अतएव—

कौंतेय	= हे कुंतीपुत्र	सहजम्	= स्वाभाविक*
सदोषम्	= दोषयुक्त	कर्म	= कर्मको
अपि	= भी	न	= नहीं

* प्रकृतिके अनुसार शास्त्र विधिसे नियत किये हुए जो वर्णाश्रमके धर्म और सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म हैं उनको ही यहां 'स्वधर्म' 'सहज कर्म' 'स्वकर्म' 'नियत कर्म' 'स्वभावज कर्म' 'स्वभाव नियत कर्म' इत्यादि नामोंसे कहा है।

त्यजेत्	= त्यागना चाहिये		इव	= सदृश
हि	= क्योंकि		सर्वारंभाः	= सब ही कर्म (किसीनकिसी)
धूमेन	= धूयेंसे		दोषेण	= दोषसे
अग्निः	= अग्निके		आवृताः	= आवृत हैं ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति

असक्तबुद्धिः, सर्वत्र, जितात्मा, विगतस्पृहः, नैष्कर्म्य-सिद्धिम्, परमाम्, संन्यासेन, अधिगच्छति ॥४६॥

तथा हे अर्जुन-

सर्वत्र	= सर्वत्र		संन्यासेन	= सांख्ययोगके द्वारा (भी)
असक्त-बुद्धिः	= आसक्तिरहित बुद्धिवाला		परमाम्	= परम
विगत-स्पृहः	= स्पृहा रहित (और)		नैष्कर्म्य-सिद्धिम्	= नैष्कर्म्य सिद्धिको
जितात्मा	= जीते हुए अन्तःकरण-वाला पुरुष		अधिग-च्छति	= प्राप्त होता है-

अर्थात् क्रिया रहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ५०

सिद्धिम्, प्राप्तः, यथा, ब्रह्म, तथा, आप्नोति, निबोध, मे, समासेन, एव, कौंतेय, निष्ठा, ज्ञानस्य, या, परा ॥

इसलिये—

कौंतेय	=हे कुंतीपुत्र	आप्नोति	=प्राप्त होता है
सिद्धिम्	={अन्तःकरण-की शुद्धिरूप सिद्धिको	तथा	=तथा
		या	=जो
		ज्ञानस्य	=तत्त्व-ज्ञानकी
प्राप्तः	={प्राप्त हुआ पुरुष	परा	=परा
		निष्ठा	=निष्ठा है
यथा	=जैसे (सांख्य योगके द्वारा)	(तत्)	=उसको
		एव	=भी (तूं)
		मे	=मेरेसे
ब्रह्म	={सच्चिदानन्द-घन ब्रह्मको	समासेन	=संक्षेपसे
		निबोध	=जान ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो
धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा
रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ५२

बुद्ध्या, विशुद्धया, युक्तः, धृत्या, आत्मानम्, नियम्य, च, शब्दादीन्, विषयान्, त्यक्त्वा, रागद्वेषौ, व्युदस्य, च ॥५१॥

विविक्तसेवी, लघ्वाशी, यतवाक्कायमानसः, ध्यानयोगपरः, नित्यम्, वैराग्यम्, समुपाश्रितः ॥५२॥

हे अर्जुन—

विशुद्धया = विशुद्ध	नित्यम् = निरन्तर
बुद्ध्या = बुद्धिसे	ध्यानयोगपरः = ध्यानयोगके परायण हुआ
युक्तः = युक्त	धृत्या = सात्त्विक धारणासे†
विविक्तसेवी = एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला (तथा)	आत्मानम् = अंतःकरणको
	नियम्य = वशमें करके
	च = तथा
लघ्वाशी = मिताहारी*	शब्दादीन् = शब्दादिक
यतवाक्कायमानसः = जीते हुए मन वाणी शरीरवाला (और)	विषयान् = विषयोंको
	त्यक्त्वा = त्यागकर
वैराग्यम् = दृढ़ वैराग्यको	च = और
समुपाश्रितः = भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष	रागद्वेषौ = रागद्वेषोंको
	व्युदस्य = नष्ट करके ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

* हलका और अल्प आहार करनेवाला ।

† गीता अ० १८ श्लो० ३३ में जिसका विस्तार है ।

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्, विमुच्य, निर्ममः, शांतः, ब्रह्मभूयाय, कल्पते ॥

तथा–

अहंकारम् = अहंकार
बलम् = बल
दर्पम् = घमंड
कामम् = काम
क्रोधम् = क्रोध (और)
परिग्रहम् = संग्रहको
विमुच्य = त्यागकर
निर्ममः = ममता रहित
(और)
शांतः = शांत अन्तःकरण हुआ
ब्रह्मभूयाय = सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभाव होनेके लिये
कल्पते = योग्य होता है॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ५४

ब्रह्मभूतः, प्रसन्नात्मा, न, शोचति, न, कांक्षति, समः, सर्वेषु, भूतेषु, मद्भक्तिम्, लभते, पराम् ॥

फिर वह–

ब्रह्मभूतः = सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित हुआ
प्रसन्नात्मा = प्रसन्न चित्तवाला पुरुष
न = न (तो किसी वस्तुके लिये)
शोचति = शोक करता है (और)
न = न
(किसीकी)

काङ्क्षति = { आकांक्षा (ही) करता है
(एवं)
सर्वेषु = सब
भूतेषु = भूतोंमें
समः = समभाव हुआ*
पराम् मद्भक्तिम् = { मेरी परा† भक्तिको
लभते = प्राप्त होता है॥

भक्त्यामामभिजानाति
यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा
विशते तदनंतरम् ॥५५॥

भक्त्या, माम्, अभिजानाति, यावान्, यः, च, अस्मि, तत्त्वतः, ततः, माम्, तत्त्वतः, ज्ञात्वा, विशते, तदनंतरम्॥

और उस-

भक्त्या = { परा भक्तिके द्वारा
माम् = मेरेको
तत्त्वतः = तत्त्वसे
अभिजानाति = { भली प्रकार जानता है
(कि)
(अहम्) = मैं
यः = जो
च = और
यावान् = { जिस प्रभाववाला

---

* गीता अ० ६ श्लो० २९ में देखना चाहिये।

† जो तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता वही यहां "पराभक्ति" "ज्ञानकी परानिष्ठा" "परमनैष्कर्म्यसिद्धि" और "परमसिद्धि" इत्यादि नामोंसे कही गई है।

अस्मि	=हूं (तथा)	ज्ञात्वा	=जानकर
ततः	=उस भक्तिसे	तदनंतरम्	=तत्काल (ही)
माम्	=मेरेको	विशते	=मेरेमें प्रवेश हो जाता है-
तत्त्वतः	=तत्त्वसे		

अर्थात् अनन्यभावसे मेरेको प्राप्त हो जाता है फिर उसकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवके सिवाय और कुछ भी नहीं रहता ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

सर्वकर्माणि, अपि, सदा, कुर्वाणः, मद्व्यपाश्रयः, मत्प्रसादात्, अवाप्नोति, शाश्वतम्, पदम्, अव्ययम्॥५६

और-

मद्व्यपाश्रयः	=मेरे परायण हुआ निष्काम कर्मयोगी (तो)	अपि	=भी
सर्वकर्माणि	=संपूर्ण कर्मोंको	मत्प्रसादात्	=मेरी कृपासे
सदा	=सदा	शाश्वतम्	=सनातन
कुर्वाणः	=करता हुआ	अव्ययम्	=अविनाशी
		पदम्	=परमपदको
		अवाप्नोति	=प्राप्त हो जाता है॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥५७॥

चेतसा, सर्वकर्माणि, मयि, संन्यस्य, मत्परः, बुद्धियोगम्, उपाश्रित्य, मच्चित्तः, सततम्, भव ॥

इसलिये हे अर्जुन तूं-

सर्वकर्माणि	= सब कर्मोंको	बुद्धियोगम्	= समत्व बुद्धिरूप निष्काम कर्मयोगको
चेतसा	= मनसे		
मयि	= मेरेमें	उपाश्रित्य	= अवलम्बन करके
संन्यस्य	= अर्पण करके*		
मत्परः	= मेरे परायण हुआ	सततम्	= निरन्तर
		मच्चित्तः	= मेरेमें चित्तवाला
		भव	= हो ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥

मच्चित्तः, सर्वदुर्गाणि, मत्प्रसादात्, तरिष्यसि, अथ, चेत्, त्वम्, अहंकारात्, न, श्रोष्यसि, विनंक्ष्यसि ॥५८

इस प्रकार-

त्वम्	= तूं	मत्प्रसादात्	= मेरी कृपासे
मच्चित्तः	= मेरेमें निरन्तर मनवाला हुआ	सर्वदुर्गाणि	= जन्म मृत्यु आदि सब संकटोंको

* गीता, अध्याय ९ श्लोक २७ में जिसकी विधि कही है ।

(अनायास ही)
तरिष्यसि = तर जायगा
अथ = और
चेत् = यदि
अहंकारात् = अहंकारके कारण
(मेरे बचनोंको)
न = नहीं
श्रोष्यसि = सुनेगा (तो)
विनंक्ष्यसि = नष्ट होजायगा अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जायगा ॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति

यत्, अहंकारम्, आश्रित्य, न, योत्स्ये, इति, मन्यसे, मिथ्या, एष, व्यवसायः, ते, प्रकृतिः, त्वाम्, नियोक्ष्यति ॥५६

और-

यत् = जो (तूं)
अहंकारम् = अहंकारको
आश्रित्य = अवलम्बन करके
इति = ऐसे
मन्यसे = मानता है (कि)
न योत्स्ये = मैं युद्ध नहीं करूंगा (तो)
एष = यह
ते = तेरा
व्यवसायः = निश्चय
मिथ्या = मिथ्या है
(यतः) = क्योंकि
प्रकृतिः = क्षत्रियपनका स्वभाव
त्वाम् = तेरेको
नियोक्ष्यति = जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा ॥

स्वभावजेन कौंतेय
निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्-
करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

स्वभावजेन, कौंतेय, निबद्धः, स्वेन, कर्मणा, कर्त्तुम्, न, इच्छसि, यत्, मोहात्, करिष्यसि, अवशः, अपि, तत् ॥

और–

कौंतेय	=हे अर्जुन	अपि	=भी
यत्	=जिस कर्मको (तूं)	स्वेन	=अपने (पूर्वकृत)
मोहात्	=मोहसे	स्वभावजेन	=स्वाभाविक
न	=नहीं	कर्मणा	=कर्म से
कर्त्तुम्	=करना	निबद्धः	=बंधा हुआ
इच्छसि	=चाहता है	अवशः	=परवश होकर
तत्	=उसको	करिष्यसि	=करेगा ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ६१

ईश्वरः, सर्वभूतानाम्, हृद्देशे, अर्जुन, तिष्ठति, भ्रामयन्, सर्वभूतानि, यंत्रारूढानि, मायया ॥

क्योंकि—

अर्जुन	= हे अर्जुन	मायया	= अपनी मायासे (उनके कर्मोंके अनुसार)
यंत्रारूढानि	= शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए	भ्रामयन्	= भ्रमाता हुआ
सर्वभूतानि	= संपूर्ण प्राणियोंको	सर्वभूतानाम्	= सब भूत प्राणियोंके
ईश्वरः	= अन्तर्यामी परमेश्वर	हृद्देशे	= हृदयमें
		तिष्ठति	= स्थित है ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिंस्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतं

तम्, एव, शरणम्, गच्छ, सर्वभावेन, भारत, तत्प्रसादात्, पराम्, शांतिम्, स्थानम्, प्राप्स्यसि, शाश्वतम् ॥६२॥

इसलिये—

भारत	= हे भारत	एव	= ही
सर्वभावेन	= सब प्रकारसे	शरणम्	= अनन्य शरणको*
तम्	= उस परमेश्वरकी	गच्छ	= प्राप्त हो

* लज्जा भय मान बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर एवं शरीर और संसारमें अहन्ता ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेम पूर्वक निरंतर भगवान्के नाम गुण प्रभाव और स्वरूपका चिंतन करते रहना एवं भगवान्का भजन स्मरण रखते हुए

तत्प्रसादात्	= उस परमात्माकी कृपासे (ही)	शांतिम्	= शांतिको (और)
पराम्	= परम	शाश्वतम्	= सनातन
		स्थानम्	= परमधामको
		प्राप्स्यसि	= प्राप्त होगा ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥६३॥

इति, ते, ज्ञानम्, आख्यातम्, गुह्यात्, गुह्यतरम्, मया, विमृश्य, एतत्, अशेषेण, यथा, इच्छसि, तथा, कुरु ॥

इति	= इस प्रकार यह	अशेषेण	= संपूर्णतासे
गुह्यात्	= गोपनीयसे (भी)	विमृश्य	= अच्छी प्रकार विचारके (फिर तूं)
गुह्यतरम्	= अतिगोपनीय		
ज्ञानम्	= ज्ञान	यथा	= जैसे
मया	= मैंने	इच्छसि	= चाहता है
ते	= तेरे लिये	तथा	= वैसे ही
आख्यातम्	= कहा है	कुरु	= कर—
एतत्	= इस रहस्ययुक्त ज्ञानको		

अर्थात् जैसी तेरी इच्छा हो वैसे ही कर ॥

ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य कर्मोंका निःस्वार्थ भावसे केवल परमेश्वरके लिये आचरण करना यह "सब प्रकारसे परमात्माके अनन्य शरण" होना है।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्

सर्वगुह्यतमम्, भूयः, शृणु, मे, परमम्, वचः, इष्टः, असि, मे, दृढम्, इति, ततः, वक्ष्यामि, ते, हितम् ॥६४॥

इतना कहनेपर भी अर्जुनका कोई उत्तर नहीं मिलनेके कारण श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि हे अर्जुन—

सर्वगुह्यतमम्	= संपूर्ण गोपनीयोंसेभी अति गोपनीय	दृढम्	= अतिशय
		इष्टः	= प्रिय
		असि	= है
मे	= मेरे	ततः	= इससे
परमम्	= परम(रहस्य युक्त)	इति	= यह
वचः	= वचनको (तूं)	हितम्	= परम हितकारक वचन (मैं)
भूयः	= फिर (भी)		
शृणु	= सुन(क्योंकितूं)	ते	= तेरेलिये
मे	= मेरा	वक्ष्यामि	= कहूंगा ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

मन्मनाः, भव, मद्भक्तः, मद्याजी, माम्, नमस्कुरु, माम्, एव, एष्यसि, सत्यम्, ते, प्रतिजाने, प्रियः, असि, मे ॥६५॥

हे अर्जुन तूं–

मन्मनाः भव	=	केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य निरन्तर अचल मनवाला हो (और)
मद्भक्तः (भव)	=	मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धा भक्ति सहित निष्कामभावसे नाम गुण और प्रभावके श्रवण कीर्तन मनन और पठन-पाठन द्वारा निरन्तर भजनेवाला हो (तथा)
मद्याजी (भव)	=	मुझ शंख चक्र गदा पद्म और किरीट कुंडल आदि भूषणोंसे युक्त पीताम्बर वनमाला और कौस्तुभ मणिधारी विष्णुका "मन वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके" अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमसे विह्वलता पूर्वक पूजन करनेवाला हो (और)
माम्	=	मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधुर्य गंभीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे संपन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको
नमस्कुरु	=	विनय भाव पूर्वक भक्ति सहित साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर
(एवम्)	=	ऐसा करनेसे (तूं)
माम्	=	मेरेको

एव	=ही	(यतः)	=क्योंकि (तूं)
एष्यसि	=प्राप्त होगा (यह मैं)	मे	=मेरा
ते	=तेरे लिये	प्रियः	=अत्यन्त प्रिय (सखा)
सत्यम्	=सत्य	असि	=है ॥
प्रतिजाने	=प्रतिज्ञा करता हूं		

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज, अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः ॥६६

इसलिये—

सर्वधर्मान्	=सर्व धर्मोंको अर्थात् संपूर्ण कर्मोंके आश्रयको	शरणम्	=अनन्य शरणको*
		व्रज	=प्राप्त हो
		अहम्	=मैं
परित्यज्य	=त्यागकर	त्वा	=तेरेको
एकम्	=केवल एक	सर्वपापेभ्यः	=संपूर्ण पापोंसे
माम्	=मुझ सच्चिदानंदघन वासुदेव परमात्माकी ही	मोक्षयिष्यामि	=मुक्त कर-दूंगा
		मा शुचः	=तूं शोक मत कर ॥

* इसी अध्यायके श्लो० ६२ की टिप्पणीमें अनन्य शरणका भाव देखना चाहिये ।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

इदम्, ते, न, अतपस्काय, न, अभक्ताय, कदाचन, न, च, अशुश्रूषवे, वाच्यम्, न, च, माम्, यः, अभ्यसूयति ॥६७

हे अर्जुन इस प्रकार–

ते	=तेरे (हितके लिये कहे हुए)	च	=तथा
इदम्	=इस गीतारूप परम रहस्यको	न	=न
कदाचन	=किसी काल-में भी	अशुश्रूषवे	=बिना सुनने-कीइच्छावाले के ही प्रति
न	=न (तो)	(वाच्यम्)	=कहना चाहिये (एवं)
अतपस्काय	=तप रहित मनुष्यके प्रति	यः	=जो
वाच्यम्	=कहना चाहिये	माम्	=मेरी
च	=और	अभ्यसूयति	=निन्दा करता है
न	=न	(तस्मै)	=उसके प्रति भी
अभक्ताय	=भक्ति* रहितके प्रति	न	=नहीं कहना चाहिये–

परन्तु जिनमें यह सब दोष नहीं हो ऐसे भक्तोंके प्रति प्रेमपूर्वक उत्साहके सहित कहना चाहिये॥

* वेद शास्त्र और परमेश्वर तथा महात्मा और गुरुजनोंमें श्रद्धा प्रेम और पूज्यभावका नाम भक्ति है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ६८

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, मद्भक्तेषु, अभिधास्यति, भक्तिम्, मयि, पराम्, कृत्वा, माम्, एव, एष्यति, असंशयः ॥

क्योंकि—

यः	=जो पुरुष	मद्भक्तेषु	=मेरे भक्तोंमें
मयि	=मेरेमें	अभिधा-स्यति	=कहेगा*
पराम्	=परम	(सः)	=वह
भक्तिम्	=प्रेम	असंशयः	=निःसन्देह
कृत्वा	=करके	माम्	=मेरेको
इमम्	=इस	एव	=ही
परमम्	=परम	एष्यति	=प्राप्त होगा ॥
गुह्यम्	=रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको		

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ६९

न, च, तस्मात्, मनुष्येषु, कश्चित्, मे, प्रियकृत्तमः, भविता, न, च, मे, तस्मात्, अन्यः, प्रियतरः, भुवि ॥

च	=और	न	=न (तो)

* अर्थात् निष्काम भावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ावेगा या अर्थकी व्याख्या द्वारा इसका प्रचार करेगा ।

तस्मात्	=उससे बढ़कर	च	=और
मे	=मेरा	न	=न
प्रियकृत्तमः	=अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला	तस्मात्	=उससे बढ़कर
		मे	=मेरा
		प्रियतरः	=अत्यंत प्यारा
मनुष्येषु	=मनुष्योंमें	भुवि	=पृथिवीमें
कश्चित्	=कोई	अन्यः	=दूसरा (कोई)
(अस्ति)	=है	भविता	= होवेगा ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टःस्यामिति मे मतिः७०

अध्येष्यते, च, यः, इमम्, धर्म्यम्, संवादम्, आवयोः, ज्ञानयज्ञेन, तेन, अहम्, इष्टः, स्याम्, इति, मे, मतिः ॥

च	=तथा(हेअर्जुन)	तेन	=उसके द्वारा
यः	=जो (पुरुष)	अहम्	=मैं
इमम्	=इस	ज्ञानयज्ञेन	=ज्ञानयज्ञसे*
धर्म्यम्	=धर्ममय	इष्टः	=पूजित
आवयोः	=हम दोनोंके	स्याम्	=होऊंगा
संवादम्	=संवादरूपगीता शास्त्रको	इति	=ऐसा
		मे	=मेरा
अध्येष्यते	=पढ़ेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा	मतिः	=मत है ॥

* गी० अ० ४ श्लो० ३३ का अर्थ देखना चाहिये ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्

श्रद्धावान्, अनसूयः, च, शृणुयात्, अपि, यः, नरः, सः, अपि, मुक्तः, शुभान्, लोकान्, प्राप्नुयात्, पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

तथा–

यः	=जो	सः	=वह
नरः	=पुरुष	अपि	=भी
श्रद्धावान्	=श्रद्धायुक्त	मुक्तः	=पापोंसे मुक्त हुआ
च	=और		
अनसूयः	=दोष दृष्टिसे रहित हुआ (इस गीता शास्त्रका)	पुण्यकर्मणाम्	=उत्तमकर्म करनेवालोंके
		शुभान्	=श्रेष्ठ
		लोकान्	=लोकोंको
शृणुयात् अपि	=श्रवण मात्र भी करेगा	प्राप्नुयात्	=प्राप्त होवेगा ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

कच्चित्, एतत्, श्रुतम्, पार्थ, त्वया, एकाग्रेण, चेतसा, कच्चित्, अज्ञानसंमोहः, प्रनष्टः, ते, धनंजय ॥

इस प्रकार गीताका माहात्म्य कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदने अर्जुनसे पूछा–

पार्थ	=हे पार्थ		(और)
कच्चित्	=क्या	धनंजय	=हे धनंजय
एतत्	=यह(मेरा वचन)	कच्चित्	=क्या
त्वया	=तैंने	ते	=तेरा
एकाग्रेण	=एकाग्र	अज्ञान-संमोहः	=अज्ञानसे उत्पन्न हुआ मोह
चेतसा	=चित्तसे		
श्रुतम्	=श्रवण किया ?	प्रनष्टः	=नष्ट हुआ ?॥

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ७३

नष्टः, मोहः, स्मृतिः, लब्धा, त्वत्प्रसादात्, मया, अच्युत, स्थितः, अस्मि, गतसंदेहः, करिष्ये, वचनम्, तव ॥

इस प्रकार भगवान्‌के पूछनेपर अर्जुन बोला-

अच्युत	=हे अच्युत	लब्धा	=प्राप्त हुई है (इसलिये मैं)
त्वत्प्रसादात्	=आपकी कृपासे	गतसंदेहः	=संशय रहित हुआ
(मम)	=मेरा	स्थितः	=स्थित
मोहः	=मोह	अस्मि	=हूं (और)
नष्टः	=नष्ट हो गया है (और)	तव	=आपकी
मया	=मुझे	वचनम्	=आज्ञा
स्मृतिः	=स्मृति	करिष्ये	=पालन करूंगा॥

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४

इति, अहम्, वासुदेवस्य, पार्थस्य, च, महात्मनः, संवादम्, इमम्, अश्रौषम्, अद्भुतम्, रोमहर्षणम् ॥

इसके उपरान्त संजय बोला हे राजन्–

इति	=इस प्रकार	इमम्	=इस
अहम्	=मैंने	अद्भुतम्	=अद्भुत रहस्ययुक्त (और)
वासुदेवस्य	=श्रीवासुदेवके		
च	=और	रोमहर्षणं	=रोमांचकारक
महात्मनः	=महात्मा	संवादम्	=संवादको
पार्थस्य	=अर्जुनके	अश्रौषम्	=सुना ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्

व्यासप्रसादात्, श्रुतवान्, एतत्, गुह्यम्, अहम्, परम्, योगम्, योगेश्वरात्, कृष्णात्, साक्षात्, कथयतः, स्वयम् ७५

कैसे कि–

व्यासप्रसादात्	=श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टिद्वारा	एतत्	=इस
		परम्	=परम (रहस्ययुक्त)
अहम्	=मैंने	गुह्यम्	=गोपनीय

योगम्	=योगको	योगेश्वरात्	=योगेश्वर
साक्षात्	=साक्षात्	कृष्णात्	=श्रीकृष्ण भगवान्से
कथयतः	=कहते हुए		
स्वयम्	=स्वयम्	श्रुतवान्	=सुना है ॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ७६

राजन्, संस्मृत्य, संस्मृत्य, संवादम्, इमम्, अद्भुतम्, केशवार्जुनयोः, पुण्यम्, हृष्यामि, च, मुहुर्मुहुः ॥

इसलिये—

राजन्	=हे राजन्	च	=और
केशवार्जुनयोः	=श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुनके	अद्भुतम्	=अद्भुत
		संवादम्	=संवादको
		संस्मृत्य संस्मृत्य	=पुनःपुनः स्मरण करके(मैं)
इमम्	=इस (रहस्य-युक्त)	मुहुर्मुहुः	=बारम्बार
पुण्यम्	=कल्याण कारक	हृष्यामि	=हर्षित होताहूं॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनःपुनः

तत्, च, संस्मृत्य, संस्मृत्य, रूपम्, अति, अद्भुतम्, हरेः, विस्मयः, मे, महान्, राजन्, हृष्यामि, च, पुनः, पुनः॥७७॥

तथा—

राजन्	=हे राजन्	हरेः	=श्री हरिके*

* जिसका स्मरण करनेसे पापोंका नाश होता है उसका नाम हरि है।

तत् =उस
अति =अति
अद्भुतम् =अद्भुत
रूपम् =रूपको
च =भी
संस्मृत्य संस्मृत्य = पुनः पुनः स्मरण करके
मे =मेरे (चित्तमें)

महान् =महान्
विस्मयः =आश्चर्य (होता है)
च =और
(अहम्) =मैं
पुनः पुनः =बारम्बार
हृष्यामि =हर्षित होताहूं ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ७८

यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः, तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः, मम ॥

हे राजन् विशेष क्या कहूं—

यत्र =जहां
योगेश्वरः =योगेश्वर
कृष्णः = श्रीकृष्ण भगवान् हैं (और)
यत्र =जहां
धनुर्धरः = गांडीव धनुषधारी
पार्थः =अर्जुन है

तत्र =वहींपर
श्रीः =श्री
विजयः =विजय
भूतिः =विभूति(और)
ध्रुवा =अचल
नीतिः =नीति है
(इति) =ऐसा
मम =मेरा
मतिः =मत है ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतारूपी उपनिषद् एवं ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र विषयक श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादमें "मोक्षसंन्यासयोग" नामक अठारहवां अध्याय।

"श्रीमद्भगवद्गीता" यह एक परम रहस्यका विषय है। इसको परम कृपालु श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त करके सभी प्राणियोंके हितके लिये कहा है। परन्तु इसके प्रभावको वे ही पुरुष जान सकते हैं कि जो भगवान्‌के शरण होकर श्रद्धा, भक्ति सहित इसका अभ्यास करते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको उचित है कि जितना शीघ्र हो सके अज्ञाननिद्रासे चेतकर एवं अपना मुख्य कर्तव्य समझकर श्रद्धा, भक्ति सहित सदा इसका श्रवण मनन और पठनपाठन द्वारा अभ्यास करते हुए भगवान्‌की आज्ञानुसार साधनमें लग जायँ। क्योंकि जो मनुष्य श्रद्धा, भक्तिसहित इसका मर्म जाननेके लिये इसके अन्तर प्रवेश करके सदा इसका मनन करते हैं एवं भगवत् आज्ञानुसार साधन करनेमें तत्पर रहते हैं, उनके अन्तःकरणमें प्रतिदिन नये नये सद्भाव उत्पन्न होते हैं। और वे शुद्धान्तःकरण हुए शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत् हरि ॐ तत्सत्

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत्प्राप्ति।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

प्रथमवार ५००० सं० १९७९

पुस्तक मिलनेका पता—
गोविन्द भवन कार्यालय—कलकत्ता
तथाः—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६ हरिसन रोड
कलकत्ता

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

त्यागसे भगवत् प्राप्ति ।

गृहस्थाश्रममें रहता हुआ भी मनुष्य त्यागके द्वारा परमात्माको प्राप्त कर सकता है । परमात्माको प्राप्त करनेके लिये "त्याग" ही मुख्य साधन है अतएव सात श्रेणियोंमें विभक्त करके त्यागके लक्षण संक्षेपमें लिखे जाते हैं ।

(१) निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग ।

चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य-भोजन और प्रमाद आदि शास्त्रविरुद्ध नीच कर्मोंको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी न करना । यह पहिली श्रेणीका त्याग है ।

(२) काम्य कर्मोंका त्याग ।

स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे एवं रोग संकटादिकी निवृत्तिके उद्देश्यसे कियेजाने वाले यज्ञ, दान, तप और उपासनादि सकाम कर्मोंको अपने स्वार्थके लिये न करना * यह दूसरी श्रेणीका त्याग है ।

* यदि कोई लौकिक अथवा शास्त्रीय ऐसा कर्म संयोगवश प्राप्त हो जाय जो कि स्वरूपसे तो सकाम हो परन्तु उसके न करनेसे किसीको कष्ट पहुंचता हो या कर्म उपासनाकी परम्परामें किसीप्रकारकी बाधा आती हो तो स्वार्थका त्याग करके केवल लोकसंग्रहके लिये उसका करलेना सकाम कर्म नहीं है ।

(३) तृष्णाका सर्वथा त्याग।

मान, बडाई, प्रतिष्ठा एवं स्त्री, पुत्र और धनादि जो कुछ भी अनित्य पदार्थ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए हों उनके बढ़नेकी इच्छाको भगवत् प्राप्तिमें बाधक समझकर उसका त्याग करना। यह तीसरी श्रेणीका त्याग है।

(४) स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेका त्याग।

अपने सुखके लिये किसीसे भी धनादि पदार्थोंकी अथवा सेवा करानेकी याचना करना एवं बिना याचनाके दिये हुए पदार्थोंको या की हुई सेवाको स्वीकार करना तथा किसी-प्रकार भी किसीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी मनमें इच्छा रखना इत्यादि जो स्वार्थके लिये दूसरोंसे सेवा करानेके भाव हैं उन सबका त्याग करना * यह चौथी श्रेणीका त्याग है।

---

* यदि कोई ऐसा अवसर योग्यतासे प्राप्त हो जाय कि शरीर संबन्धी सेवा अथवा भोजनादि पदार्थोंके स्वीकार न करनेसे किसीको कष्ट पहुंचता हो या लोक शिक्षामें किसी प्रकारकी बाधा आती हो तो उस अवसर पर स्वार्थका त्याग करके केवल उनकी प्रीतिके लिये सेवा-दिका स्वीकार करना दोष युक्त नहीं हैं क्योंकि स्त्री, पुत्र और नौकर आदिसे की हुई सेवा एवं बन्धु बान्धव और मित्र आदि द्वारा दिये हुए भोजनादि पदार्थ स्वीकार न करनेसे उनको कष्ट होना एवं लोक-मर्यादामें बाधा पड़ना सम्भव है।

(५) संपूर्ण कर्तव्य कर्मोंमें आलस्य और फलकी इच्छाका सर्वथा त्याग।

ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, मातापितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीर सम्बन्धी खानपान इत्यादि जितने कर्तव्य कर्म हैं उन सबमें आलस्यका और सब प्रकारकी कामनाका त्याग करना।

(क) ईश्वर-भक्तिमें आलस्यका त्याग।

अपने जीवनका परम कर्त्तव्य मानकर परम-दयालु, सबके सुहृद्, परम-प्रेमी, अन्तर्यामी परमेश्वरके गुण, प्रभाव और प्रेमकी रहस्यमयी कथा का श्रवण, मनन और पठनपाठन करना तथा आलस्यरहित होकर उनके परम-पुनीत नामका उत्साहपूर्वक ध्यान सहित निरन्तर जप करना।

(ख) ईश्वर-भक्तिमें कामनाका त्याग।

इसलोक और परलोकके संपूर्ण भोगोंको क्षणभंगुर, नाशवान् और भगवान्की भक्तिमें बाधक समझकर किसी भी वस्तुकी प्राप्तिके लिये न तो भगवान्से प्रार्थना करना और न मनमें इच्छा ही रखना। तथा किसी प्रकारका संकट आजाने पर भी उसके निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना न करना अर्थात् हृदयमें ऐसा भाव रखना कि प्राण भले ही चले जांय परन्तु इस मिथ्या जीवनके लिये विशुद्ध भक्तिमें कलंक लगाना उचित नहीं है। जैसे भक्त प्रह्लादने पिता द्वारा बहुत सताये जाने पर भी अपने कष्ट निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना नहीं की।

तथा अपना अनिष्ट करनेवालोंको भी, "भगवान् तुम्हारा बुरा करें" इत्यादि किसी प्रकारके कठोर शब्दोंसे सराप न देना और उनका अनिष्ट होनेकी मनमें इच्छा भी न रखना।

तथा भगवान्की भक्तिके अभिमानमें आकर किसीको वरदानादि भी न देना जैसे कि "भगवान् तुम्हें आरोग्य करें" "भगवान् तुम्हारा दुःख दूर करें" "भगवान् तुम्हारी आयु बढ़ावें" इत्यादि।

तथा पत्र व्यवहारमें भी सकाम शब्दोंका न लिखना अर्थात् जैसे "अठे उठे श्रीठाकुरजी सहाय छै" "ठाकुरजी बिक्री चलासी" "ठाकुरजी वर्षा करसी" "ठाकुरजी आराम करसी" इत्यादि सांसारिक वस्तुओंके लिये ठाकुरजीसे प्रार्थना करनेके रूपमें सकाम शब्द मारवाड़ी समाजमें प्रायः लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीपरमात्मादेव आनन्द रूपसे सर्वत्र विराजमान हैं" "श्रीपरमेश्वरका भजन सार है" इत्यादि निष्काम मंगलीक शब्द लिखना। तथा इसके सिवाय अन्य किसी प्रकारसे भी लिखने, बोलने आदिमें सकाम शब्दोंका प्रयोग न करना।

(ग) देवाताओंके पूजनमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शास्त्र-मर्यादासे अथवा लोक-मर्यादासे पूजनेके योग्य देवताओंको पूजनेका नियत समय आनेपर उनका पूजन करनेके लिये भगवान्की आज्ञा है एवं भगवान्की आज्ञाका पालन करना परम कर्तव्य है ऐसा समझकर उत्साह पूर्वक विधिके सहित उनका पूजन करना एवं उनसे किसी प्रकारकी भी कामना न करना।

तथा उनके पूजनके उद्देश्यसे रोकड़ बहीखाते आदिमें भी सकाम शब्द न लिखना अर्थात् जैसे मारवाड़ी समाजमें नये

बसनेके दिन अथवा दीपमालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करके "श्रीलक्ष्मीजी लाभ मोकलो देसी" "भण्डार भरपूर राखसी" "ऋद्धि सिद्धि करसी" "श्रीकालीजीके आसरे" "श्रीगङ्गाजीके आसरे" इत्यादिक बहुतसे सकाम शब्द लिखे जाते हैं वैसे न लिखकर "श्रीलक्ष्मीनारायणजी सब जगह आनन्द रूपसे विराजमान हैं" तथा "बहुत आनन्द और उत्साहके सहित श्रीलक्ष्मीजीका पूजनकिया" इत्यादि निष्काम माङ्गलिक शब्द लिखना और नित्य रोकड़ नकल आदिके आरम्भ करनेमें भी उपरोक्त रीतिसे ही लिखना।

(घ) माता पितादि गुरुजनोंकी सेवामें आलस्य और कामनाका त्याग।

माता, पिता, आचार्य एवं और भी जो पूजनीय पुरुष वर्ण, आश्रम, अवस्था और गुणोंमें किसी प्रकार भी अपनेसे बडे हों उन सबकी सबप्रकारसे नित्य सेवा करना और उनको नित्य प्रणाम करना मनुष्यका परम कर्तव्य है इस भावको हृदयमें रखते हुए आलस्यका सर्वथा त्याग करके, निष्काम भावसे उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार उनकी सेवा करनेमें तत्पर रहना।

(ङ) यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

पञ्च महायज्ञादि* नित्यकर्म एवं अन्यान्य नैमित्तिक कर्मरूप यज्ञादिका करना, तथा अन्न, वस्त्र, विद्या, औषध और

---

* पञ्च महायज्ञ यह हैं। देवयज्ञ (अग्निहोत्रादि) ऋषियज्ञ (वेद-पाठ,संध्या,गायत्री जपादि) पितृयज्ञ (तर्पण श्राद्धादि) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा) और भूतयज्ञ (बलिवैश्व)

धनादि पदार्थोंके दान द्वारा सम्पूर्ण जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी और शरीरसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना, तथा अपने धर्मका पालन करनेके लिये हर-प्रकारसे कष्ट सहन करना, इत्यादि शास्त्रविहित कर्मोंमें इसलोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंकी कामनाका सर्वथा त्याग करके एवं अपना परम कर्तव्य मानकर श्रद्धासहित, उत्साहपूर्वक भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ ही उनका आचरण करना।

(च) आजीविका द्वारा गृहस्थ-निर्वाहके उपयुक्त कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

आजीविकाके कर्म जैसे वैश्यके लिये कृषि, गोरक्ष्य और वाणिज्य आदि कहे हैं वैसे ही जो अपने अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार शास्त्रमें विधान किये गये हों उन सबके पालन द्वारा संसारका हित करते हुए ही गृहस्थका निर्वाह करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा है इसलिये अपना कर्तव्य मानकर लाभ हानिको समान समझते हुए सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग-करके उत्साहपूर्वक उपरोक्त कर्मोंका करना*।

---

* उपरोक्त भावसे करनेवाले पुरुषके कर्म लोभसे रहित होनेके कारण उनमें किसीप्रकारका भी दोष नहीं आ सकता क्योंकि आजी-विकाके कर्मोंमें लोभ ही विशेष रूपसे पाप करानेका हेतु है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि गीता अध्याय १८ श्लोक ४४ की टिप्पणीमें जैसे वैश्यके प्रति वाणिज्यके दोषोंका त्याग करनेके लिये विस्तारपूर्वक लिखा है उसीप्रकार अपने अपने वर्ण, आश्रमके अनुसार सम्पूर्ण कर्मोंमें सब प्रकारके दोषोंका त्याग करके केवल भगवान्‌की आज्ञा समझकर भगवान्‌के लिये निष्काम भावसे ही सम्पूर्ण कर्मोंका आचरण करें।

(छ) शरीर सम्बन्धी कर्मोंमें आलस्य और कामनाका त्याग।

शरीर निर्वाहके लिये शास्त्रोक्त रीतिसे भोजन, वस्त्र और औषधादिका सेवनरूप जो शरीर सम्बन्धी कर्म हैं उनमें सबप्रकारके भोग-विलासोंकी कामनाका त्यागकरके एवं सुख, दुःख, लाभ, हानि और जीवन, मरण आदिको समान समझकर केवल भगवत् प्राप्तिके लिये ही योग्यताके अनुसार उनका आचरण करना।

पूर्वोक्त चार श्रेणियोंके त्यागसहित इस पाँचवीं श्रेणीके त्यागानुसार सम्पूर्ण दोषोंका और सब प्रकारकी कामनाओंका नाशहोकर केवल एक भगवत् प्राप्तिकी ही तीव्र इच्छाका होना ज्ञानकी पहिली भूमिकामें परिपक्क अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये।

(६) संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें, ममता और आसक्तिका सर्वथा त्याग।

धन, भवन और वस्त्रादि सम्पूर्ण वस्तुवें तथा स्त्री, पुत्र और मित्रादि सम्पूर्ण बान्धवजन एवं मान, बडाई और प्रतिष्ठा इत्यादि इसलोकके और परलोकके जितने विषयभोगरूप पदार्थ हैं उन सबको क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य समझकर उनमें ममता और आसक्तिका न रहना तथा केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही अनन्य भावसे विशुद्ध प्रेम होनेके कारण मन,वाणी और शरीर द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण

क्रियाओंमें और शरीरमें भी ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना। यह छठी श्रेणीका त्याग है* ।

उक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषोंका संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें वैराग्य होकर केवल एक परम प्रेममय भगवान्में ही अनन्य प्रेम हो जाता है । इसलिये उनको भगवान्के गुण प्रभाव और रहस्यसे भरीहुई विशुद्ध प्रेमके विषयकी कथाओंका सुनना सुनाना और मनन करना तथा एकान्त देशमें रहकर निरन्तर भगवान्का भजन, ध्यान और शास्त्रोंके मर्मका विचार करना ही प्रिय लगता है । विषयासक्त मनुष्योंमें रहकर हास्य, विलास, प्रमाद, निन्दा, विषयभोग और व्यर्थ-वार्त्तादिमें अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी विताना अच्छा नहीं लगता । एवं उनके द्वारा सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्म भगवान्के स्वरूप और नामका मनन रहते हुए ही विना आसक्तिके केवल भगवदर्थ होते हैं ।

इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिका त्याग होकर केवल एक सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही विशुद्ध प्रेमका होना ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण समझने चाहिये ।

---

* सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग तो तीसरी और पांचवीं श्रेणीके त्यागमें कहा गया परन्तु उपरोक्त त्यागके होनेपर भी उनमें ममता और आसक्ति शेष रह जाती है जैसे भजन ध्यान और सत्सङ्गके अभ्यासले भरतमुनिका सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका त्याग होनेपर भी हरिणमें और हरिणके पालनरूप कर्ममें ममता और आसक्ति बनी रही। इसलिये संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें ममता और आसक्तिके त्यागको छठी श्रेणीका त्याग कहा है ।

(७) संसार, शरीर और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासना और अहंभावका सर्वथा त्याग।

संसारके सम्पूर्ण पदार्थ मायाके कार्य होनेसे सर्वथा अनित्य हैं और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं ऐसा दृढ़ निश्चय होकर शरीर सहित संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें और सम्पूर्ण कर्मोंमें सूक्ष्म वासनाका सर्वथा अभाव हो-जाना अर्थात् अन्तःकरणमें उनके चित्रोंका संस्काररूपसे भी न रहना एवं शरीरमें अहंभावका सर्वथा अभाव होकर मन, वाणी और शरीर द्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका लेशमात्र भी न रहना। यह सातवीं श्रेणीका त्याग है*।

इस सातवीं श्रेणीके त्यागरूप परवैराग्यको† प्राप्त हुए पुरुषोंके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ सम्पूर्ण संसारसे अत्यन्त उपराम हो जाती हैं। यदि किसी कालमें कोई सांसारिक फुरना

---

* सम्पूर्ण संसारके पदार्थोंमें और कर्मोंमें तृष्णा और फलकी इच्छाका एवं ममता और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर भी उनमें सूक्ष्म वासना और कर्तृत्व अभिमान शेष रह जाता है इसलिये सूक्ष्म वासना और अहंभावके त्यागको सातवीं श्रेणीका त्याग कहा है।

† पूर्वोक्त छठी श्रेणीके त्यागको प्राप्त हुए पुरुषकी तो विषयोंका विशेष संसर्ग होनेसे कदाचित् उनमें कुछ आसक्ति हो भी सकती है परन्तु इस सातवीं श्रेणीके त्यागी पुरुषका विषयोंके साथ संसर्ग होनेपर भी उनमें आसक्ति नहीं हो सकती क्योंकि उसके निश्चयमें एक परमात्माके सिवाय अन्य कोई वस्तु रहती ही नहीं इसलिये इस त्यागको परवैराग्य कहा है।

हो भी जाती है तो भी उसके संस्कार नहीं जमते क्योंकि उनकी एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य भावसे गाढ़ स्थिति निरन्तर बनी रहती है।

इसलिये उनके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण अवगुणोंका अभाव होकर अहिंसा,[1] सत्य,[2] अस्तेय,[3] ब्रह्मचर्य,[4] अलोलुपता,[5] लज्जा, अमानित्व,[6] निष्कपटता, शौच,[7] सन्तोष,[8] तितिक्षा,[9]

---

१ मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना।

२ अन्तःकरण और इन्द्रियोंके द्वारा जैसा निश्चय किया हो वैसाका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना।

३ चोरीका सर्वथा अभाव।

४ आठ प्रकारके मैथुनोंका अभाव।

५ किसीकी भी निन्दा न करना।

६ सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना।

७ बाहर और भीतरकी पवित्रता (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी एवं यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल मृत्तिकादिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरकी शुद्धि कहते हैं और रागद्वेष तथा कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना भीतरकी शुद्धि कहलाती है)।

८ तृष्णाका सर्वथा अभाव।

९ शीत, उष्ण, सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंका सहन करना।

सत्सङ्ग, सेवा, यज्ञ, दान, तप,१ स्वाध्याय,२ शम,३ दम,४ विनय, आर्जव,५ दया,६ श्रद्धा,७ विवेक,८ वैराग्य,९ एकान्त-वास, अपरिग्रह,१० समाधान,११ उपरामता,तेज,१२ क्षमा,१३ धैर्य,१४ अद्रोह,१५ अभय,१६ निरहंकारता, शान्ति,१७ और

---

१ स्वधर्म पालनके लिये कष्ट सहना।

२ वेद और सत्य शास्त्रोंका अध्ययन एवं भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन।

३ मनका वशमें होना।

४ इन्द्रियोंका वशमें होना।

५ शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।

६ दुःखियोंमें करुणा।

७ वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षके सदृश विश्वास।

८ सत् और असत् पदार्थका यथार्थ ज्ञान।

९ ब्रह्मलोक तकके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव।

१० ममत्व बुद्धिसे संग्रहका अभाव।

११ अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव।

१२ श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिका नाम तेज है कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

१३ अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना।

१४ भारी विपत्ति आनेपर भी अपनी स्थितिसे चलायमान न होना।

१५ अपने साथ द्वेष रखनेवालोंमें भी द्वेषका न होना।

१६ सर्वथा भयका अभाव।

१७ इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें नित्य निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

ईश्वरमें अनन्य भक्ति इत्यादि सद्गुणोंका आविर्भाव स्वभावसे ही हो जाता है।

इस प्रकार शरीर सहित सम्पूर्ण पदार्थोंमें और कर्मोंमें वासना और अहंभावका अत्यन्त अभाव होकर एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें ही एकी भावसे नित्य निरन्तर दृढ़ स्थिति रहना ज्ञानकी तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्थाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

उपरोक्त गुणोंमेंसे कितने ही तो पहिली और दूसरी भूमिकामें ही प्राप्त हो जाते हैं परन्तु सम्पूर्ण गुणोंका आविर्भाव तो प्रायः तीसरी भूमिकामें ही होता है। क्योंकि यह सब भगवत्प्राप्तिके अति समीप पहुँचे हुए पुरुषोंके लक्षण एवं भगवत् स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतु हैं इसीलिये श्रीकृष्ण भगवान्ने प्रायः इन्हीं गुणोंको श्रीगीताजीके १३ वें अध्यायमें (श्लोक ७ से ११ तक) ज्ञानके नामसे तथा १६ वें अध्यायमें (श्लोक १ से ३ तक) दैवी संपदाके नामसे कहा है।

तथा उक्त गुणोंको शास्त्रकारोंने सामान्य धर्म माना है। इसलिये मनुष्यमात्रका ही इनमें अधिकार है। अतएव उपरोक्त सद्गुणोंका अपने अन्तःकरणमें आविर्भाव करनेके लिये सभीको भगवान्के शरण होकर विशेषरूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

उपसंहार

इस लेखमें सात श्रेणियोंके त्यागद्वारा भगवत् प्राप्तिका होना कहा गया है। उनमें पहिली ५ श्रेणियोंके त्याग तक तो ज्ञानकी प्रथम भूमिकाके लक्षण और छठी श्रेणीके त्यागतक दूसरी भूमिकाके लक्षण तथा सातवीं श्रेणीके त्याग तक तीसरी भूमिकाके

लक्षण बताये गये हैं। उक्त तीसरी भूमिकामें परिपक्व अवस्था-को प्राप्त हुआ पुरुष तत्काल ही सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है फिर उसका इस क्षणभंगुर नाशवान् अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगे हुए पुरुषका स्वप्नके संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता वैसेही अज्ञान-निद्रासे जगे हुए पुरुषका भी मायाके कार्यरूप अनित्य संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। यद्यपि लोक-दृष्टिमें उस ज्ञानी पुरुषके शरीर द्वारा प्रारब्धसे सम्पूर्ण कर्म होते हुए दिखाई देते हैं एवं उन कर्मों द्वारा संसारमें बहुतही लाभ पहुंचता है क्योंकि कामना, आसक्ति और कर्तृत्व-अभिमानसे रहित होनेके कारण उस महात्माके मन, वाणी और शरीर द्वारा किये हुए आचरण लोकमें प्रमाण स्वरूप समझे जाते हैं और ऐसे पुरुषों-के भावसे ही शास्त्र बनते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवको प्राप्त हुआ पुरुष तो इस त्रिगुणमयी-मायासे सर्वथा अतीत ही है। इसलिये वह न तो गुणोंके कार्य-रूप प्रकाश, प्रवृत्ति और निद्रा आदिके प्राप्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा ही करता है। क्योंकि सुख दुःख, लाभ हानि, मान अपमान, और निन्दा स्तुति आदिमें एवं मट्टी, पत्थर और सुवर्ण आदिमें सर्वत्र उसका समभाव हो जाता है। इसलिये उस महात्माको न तो किसी प्रिय वस्तुकी प्राप्ति और अप्रियकी निवृत्तिमें हर्ष होता है न किसी अप्रियकी प्राप्ति और प्रियके वियोगमें शोक ही होता है। यदि उस धीर पुरुषका शरीर किसी कारणसे शस्त्रोंद्वारा काटा भी जाय या उसको कोई अन्य प्रकारका भारी दुःख आकर प्राप्त हो जाय तो भी वह सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें अनन्य

भावसे स्थित हुआ पुरुष उस स्थितिसे चलायमान नहीं होता। क्योंकि उसके अन्तःकरणमें सम्पूर्ण संसार मृगतृष्णाके जलकी भांति प्रतीत होता है और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी होनापना नहीं भासता। विशेष क्या कहा जाय? वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका भाव वह स्वयं ही जानता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा प्रगट करनेके लिये किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। अतएव जितना शीघ्र हो सके अज्ञान निद्रासे चेतकर उक्त सात श्रेणियोंमें कहे हुए त्याग द्वारा परमात्माको प्राप्त करनेके लिये सत्पुरुषोंकी शरण ग्रहण करके उनके कथनानुसार साधन करनेमें तत्पर होना चाहिये। क्योंकि यह अति दुर्लभ मनुष्यका शरीर बहुत जन्मोंके अन्तमें परम दयालु भगवान्की कृपासे ही मिलता है। इसलिये नाशवान् क्षणभंगुर संसारके अनित्य भोगोंको भोगनेमें अपने जीवनका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

इति

हरि ॐ तत् सत् हरि ॐ तत् सत्

हरि ॐ तत् सत्

शान्तिः शान्तिः शान्तिः